

ISSN- ०९७६-८०१७ & UGC Care listed (No. १११)

गुरुकुल-पत्रिका

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिकी मूल्याङ्कित शोध-पत्रिका)

(A Quarterly Peer Reviewed Research Journal of Oriental Studies)

अङ्क ७५/२ अक्टूबर-दिसम्बर २०२३

महर्षि दयानन्द विशेषाङ्क



सम्पादक

प्रो० (डॉ०) ब्रह्मदेव विद्यालङ्कार

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

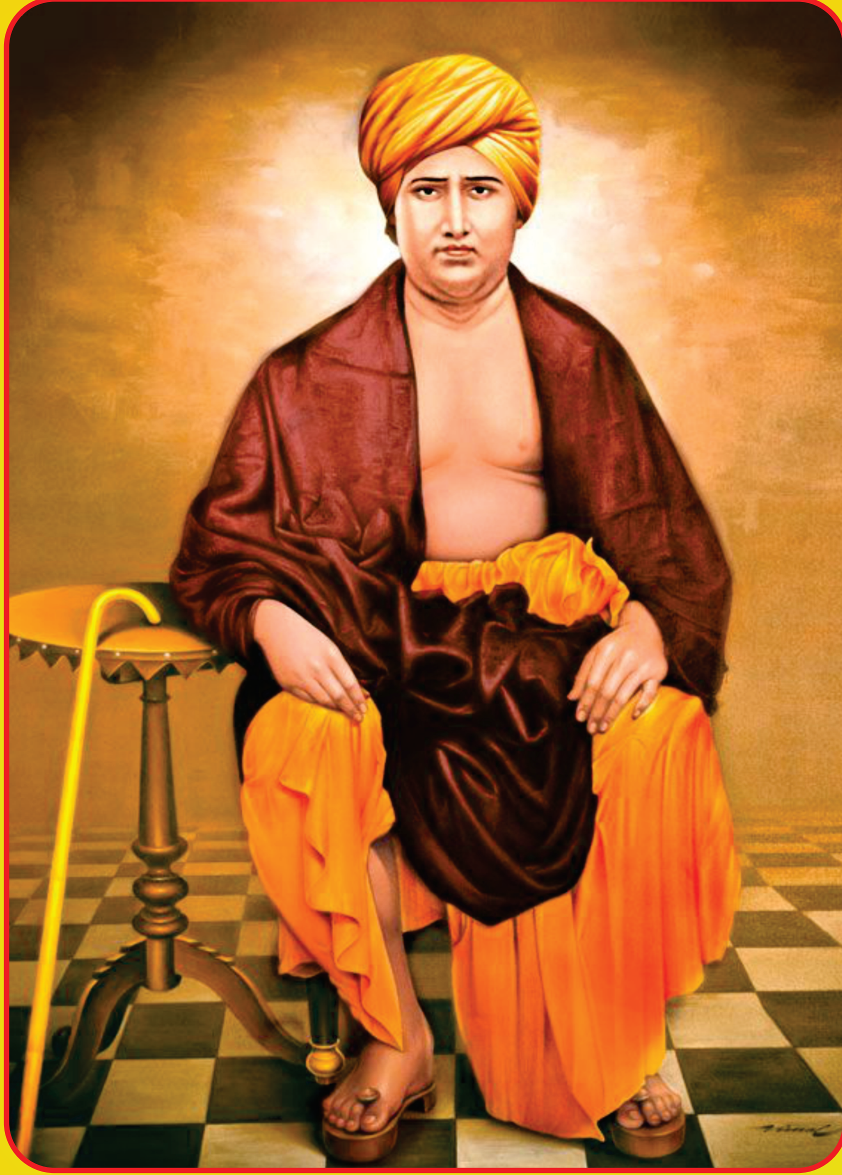
संकायाध्यक्ष, शिक्षा एवं प्रशिक्षण संकाय

दूरभाष - ६३९७६३४८६२, ९४१२३०७१२३

E-Mail : gurukulpatrika@gkv.ac.in

गुरुकुल काङ्गड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार - २४९४०४

आर्यसमाज के संस्थापक, अध्यात्म ज्योति से अनुप्राणित
आर्य संस्कृति के पुरोधा महर्षि दयानन्द सरस्वती



जन्म 12 फरवरी 1825 एवं मृत्यु 30 अक्टूबर 1883

ISSN- ०९७६-८०१७ & UGC Care listed(No. १११)

गुरुकुल-पत्रिका

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिकी मूल्याङ्कित शोध-पत्रिका)

(A Quarterly Peer Reviewed Research Journal of Oriental Studies)

अङ्क ७५/२ अक्टूबर-दिसम्बर २०२३

महर्षि दयानन्द विशेषाङ्क



सम्पादक

प्रो० (डॉ०) ब्रह्मदेव विद्यालङ्कार
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
संकायाध्यक्ष, शिक्षा एवं प्रशिक्षण संकाय
दूरभाष - ६३९७६३४८६२, ९४१२३०७१२३
E-Mail : gurukulpatrika@gkv.ac.in

गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार - २४९४०४

।। कुलगीत ।।

प्राणों से हमको प्यारा 'कुल' हो सदा हमारा।

विष देने वालों के भी, बन्धन कटाने वाले।
मुनियों का जन्म-दाता, कुल हो सदा हमारा।। १।।

कट जाये सिर न झुकना, यह मन्त्र जपने वाले।
वीरों का जन्म-दाता, कुल हो सदा हमारा ।। २।।

स्वाधीन्य-दीक्षितों पर, सब कुछ बहाने वाले।
धनियों का जन्म-दाता, कुल हो सदा हमारा ।। ३।।

निज जन्म-भूमि भारत, को क्लेश से छुड़ा कर।
गौरव बढ़ाने वाला, कुल हो सदा हमारा।। ४।।

तन मन सभी न्यौछावर, कर वेद का सन्देशा।
जग में ले जाने वाला, कुल हो सदा हमारा।। ५।।

हिम-शैल तुल्य ऊँचा, भागीरथी-सा पावन।
भटकों का मार्गदर्शक, दुखियों का हो सहारा।। ६।।

आजन्म ब्रह्मचारी, ज्योति जगा गया है।
अनुरूप पुत्र उस का, कुल हो सदा हमारा ।। ७।।

लेखक- पं० बुद्धदेव विद्यालंकार

संरक्षक (Patron)

१ डॉ० सत्यपाल सिंह, सांसद, बागपत लोकसभा व पूर्व केन्द्रीय राज्य मन्त्री, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार
२ प्रो० (डॉ०) सोमदेव शतांशु, कुलपति, गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

सम्पादक (Editor)

डॉ० ब्रह्मदेव विद्यालङ्कार, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग; संकायाध्यक्ष, शिक्षा एवं प्रशिक्षण संकाय गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

सह-सम्पादक मण्डल (Co-editors)

१ डॉ० दिलीप कुमार कुशवाहा, प्रा०भा०इति०सं० एवं पुरातत्त्व विभाग, गु०काँ०वि०वि०, हरिद्वार।
२ डॉ० दीनदयाल वेदालङ्कार, वेद विभाग, गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार।
३ डॉ० बबलू वेदालङ्कार, दर्शनशास्त्र विभाग, गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार।
४ डॉ० वेदव्रत, संस्कृत विभाग, गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार।

परामर्शदातृ-मण्डल (Advisory board)

१ प्रो० मानसिंह, पूर्व आचार्य, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
२ प्रो० ओमप्रकाश पाण्डेय, पूर्वसचिव, सान्दीपनि वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन
३ प्रो० शशि प्रभा कुमार, अध्यक्ष, भारतीय उच्च अध्ययन केन्द्र, शिमला
४ प्रो० राधावल्लभ त्रिपाठी, पूर्व कुलपति, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, मानित विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
५ प्रो० महावीर अग्रवाल, पूर्व कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार,
६ प्रो० वेदपाल आचार्य, पूर्व प्रोफेसर, सम्पादक- प्राच्यविद्या अनुसन्धानम् एवं परोपकारी पत्रिका
७ प्रो० श्रीनिवास वरखेड़ी, कुलपति, केन्द्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
८ प्रो० वीरेन्द्र कुमार विद्यालङ्कार, अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, पञ्जाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़
९ प्रो० कमलेश छः चौकसी, पूर्व निदेशक, भाषा संस्थान, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद
१० प्रो० ओमनाथ विमली, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अङ्क के मूल्याङ्कनकर्ता –

१. प्रो० भारत भूषण विद्यालङ्कार, पूर्व आचार्य, वेद विभाग, गु०का०वि०वि० हरिद्वार
२. प्रो० सत्यपाल सिंह, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रकाशक : कुलसचिव, गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

व्यवसाय–प्रबन्धक : पुस्तकालयाध्यक्ष, गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

वित्त-प्रबन्धक : वित्ताधिकारी, गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

अथार्याभिविनयः

ओं शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शं नो॑ भवत्वर्य॒मा।
शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒ः शं नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः ॥१॥

ऋ० अ० १। अ० ६। व० १८। मं० ९॥

व्याख्यान—

हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव! हे अद्वितीयानुपमजगदादिकारण! हे अज, निराकार, सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन्! हे जगदीश, सर्वजगदुत्पादकाधार! हे सनातन, सर्वमङ्गलमय, सर्वस्वामिन्! हे करुणाकरास्मत्पितः, परमसहायक! हे सर्वानन्दप्रद, सकलदुःखविनाशक! हे अविद्यान्धकारनिर्मूलक, विद्यार्कप्रकाशक! हे परमैश्वर्यदायक, साम्राज्य-प्रसारक! हे अधमोद्धारक, पतितपावन, मान्यप्रद! हे विश्वविनोदक, विनय-विधिप्रद! हे विश्वासविलासक! हे निरञ्जन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद! हे सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय, निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक! हे दारिद्र्यविनाशक, निर्वैरविधायक, सुनीतिवर्धक! हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक! हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक! धर्मसुप्रापक! हे अर्थसुसाधक, सुकाम-वर्द्धक, ज्ञानप्रद! हे सन्ततिपालक, धर्मसुशिक्षक, रोगविनाशक! हे पुरुषार्थ-प्रापक, दुर्गुणनाशक, सिद्धिप्रद! हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताडन, गर्वकुक्रोध-कुलोभविदारक! हे परमेश, परेश, परमात्मन्, परब्रह्मन्! हे जगदानन्दक, परमेश्वर, व्यापक, सूक्ष्माच्छेद्य! हे अजरामृताभयनिर्बन्धानादे! हे अप्रतिम-प्रभाव, निर्गुणातुल, विश्वाद्य, विश्ववन्द्य, विद्वद्विलासक इत्याद्यनन्त-विशेषणवाच्य! हे मङ्गलप्रदेश्वर! आप सर्वथा सबके निश्चित मित्र हो, हमको सत्यसुखदायक सर्वदा हो। हे सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर! आप वरुण, अर्थात् सबसे परमोत्तम हो, सो आप हमको परमसुखदायक हो। हे पक्षपातरहित, धर्मन्यायकारिन्! आप अर्यमा (यमराज) हो, हमारे लिए न्याययुक्त सुख देनेवाले आप ही हो। हे परमैश्वर्यवन्, इन्द्रेश्वर! आप हमको परमैश्वर्ययुक्त शीघ्र स्थिर सुख दीजिए। हे महाविद्य वाचोऽधिपते! बृहस्पते, परमात्मन्! हम लोगों को (बृहत्) सबसे बड़े सुख को देने वाले आप ही हो। हे सर्वव्यापक, अनन्त-पराक्रमेश्वर, विष्णो! आप हमको अनन्त सुख देओ, जो कुछ माँगेंगे सो आपसे ही हम लोग माँगेंगे, सब सुखों का देने वाला आपके बिना कोई नहीं है। सर्वथा हम लोगों को आपका ही आश्रय है, अन्य किसी का नहीं, क्योंकि सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयामय सबसे बड़े पिता को छोड़के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे। आपका तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते सो आप सदैव हमको सुख देंगे, यह हम लोगों को दृढ़ निश्चय है॥१॥

॥ ओ३म् ॥



॥ श्रद्धयाग्निः समिध्यते ॥ (ऋ० १०.१५१.१)

गुरुकुल काङ्गड़ी (समविश्वविद्यालय) हरिद्वार

(यू०जी०सी० एक्ट 1956 के सेक्शन 3 के अन्तर्गत समविश्वविद्यालय)

Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

(Deemed to be University U/s 3 of UGC Act. 1956)

प्रो० सोमदेव शतांशु
कुलपति (कार्यवाहक)

Prof. Somdev Shatanshu
Vice-Chancellor (Officiating)

क्रमाङ्क/Ref. No. ....   दिनाङ्क/Date ....

शुभकामना सन्देश

पुण्यसलिला भागीरथी के सुरम्य तट पर महर्षि दयानन्द सरस्वती के मानसतनय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने वैदिक ज्ञान विज्ञान के संरक्षण, प्रचार-प्रसार तथा भारत के समग्र विकास के लिए गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय की स्थापना की। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन, हिन्दी के प्रचार-प्रसार, पत्रकारिता, हैदराबाद सत्याग्रह, स्त्री शिक्षा, वैदिक साहित्य का प्रचार, कुरीति उन्मूलन, दलितोद्धार तथा सामाजिक समरसता के क्षेत्र में गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय के स्नातकों का अद्वितीय योदगान रहा है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने समय के सर्वाधिक देदीप्यमान प्रकाश पुञ्ज थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रदूत थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूलाधार वेदों को पुनः गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठापित कर भारतीय जनमानस को जागरूक करने के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया।

भारत सरकार महर्षि दयानन्द सरस्वती की 200वीं जयन्ती को सम्पूर्ण भारतवर्ष में हर्षोल्लासपूर्वक मना रही है। अतीव हर्ष का विषय है कि गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय भी इस उपलक्ष्य में 23, 24 एवं 25 दिसम्बर 2023 को वेद विज्ञान एवं संस्कृति महाकुम्भ का आयोजन कर रहा है। इस अवसर पर गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय की प्राचीन पत्रिका गुरुकुल पत्रिका **'दयानन्द विशेषांक'** प्रकाशित कर रही है। गुरुकुल पत्रिका के प्रस्तुत "दयानन्द विशेषांक" में आर्य जगत् के लब्धप्रतिष्ठ मनीषियों व शोधार्थियों द्वारा महर्षि दयानन्द के सामाजिक, साहित्यिक व राष्ट्रीय विषयक अवदान को व्यापक एवं गहनता से द्योतित किया गया है, इसके माध्यम से महर्षि के विचारों से परिचित होंगे।

इस विशेषांक को समृद्ध करने में योगदान देने वाले मनीषी विद्वज्जन व सम्पादकवृन्द के मैं भूरिश: धन्यवाद देता हूँ तथा ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि इस गुरुकुल से उद्भूत ज्ञानस्रोत को प्रवाहित करने वाली "गुरुकुल पत्रिका" आप जैसे मनीषियों से सिञ्चित व समृद्ध होती हुई वैदिक संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन करती हुई विश्वमंगल में सहायक सिद्ध हो, इन्हीं कामनाओं के साथ

(प्रो० सोमदेव शतांशु)
कुलपति

पो०ऑ०-गुरुकुल काङ्गड़ी, हरिद्वार-249404, उत्तराखण्ड (भारत) | P.O. Gurukula Kangri, Haridwar-249404, Uttarakhand (INDIA)
Tel.: +91-7300761329 (O), E-Mail: vcoffice@gkv.ac.in, somdev@gkv.ac.in Website: www.gkv.ac.in

सम्पादकीय

यथा मूलाधार से सहस्रार तक मानव शरीर में स्थित सप्तचक्र क्रमशः व्यक्ति के आनन्द के हेतु हैं तथैव मूलशङ्कर से आरम्भ कर शुद्धचैतन्य और दयानन्द नाम की यात्रा करने वाले भारत के उद्धारक स्वामी जी ने मानवता के दु:खों और अवनति के मूलकारण परतन्त्रता पर भीषण प्रहार कर स्वतन्त्रता से, शुद्धता से जीते हुए, जागरूकता से, चैतन्य-पूर्वक प्राण-त्याग कर आनन्द की यात्रा की ओर जाने का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत किया।

दयानन्द का जन्म भारतभूमि पर जिस समय हुआ उस समय देश ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन तो था ही, लेकिन मानसिक गुलामी, अकर्मण्यता, भाग्यवादिता, निद्रा, आलस्य, दीर्घसूत्रिता, अशिक्षा (उसमें नारी अशिक्षा का स्तर एकदम दयनीय स्थिति में था) ऐसे सुरसामुख थे, जो भव्य-भारत के भविष्य को निगल जाने को तत्पर थे।

एक ओर धनाभाव था ही, जिसे दूर करने के सूत्र महर्षि के साहित्य और जीवनियों में अत्यधिक मिलते हैं। एतदर्थ विदेशों तक में उनके द्वारा किए गए पत्र-व्यवहारों के प्रमाण हमें प्राप्त हैं, लेकिन धनाभाव से भी अधिक उस काल में स्वाभिमान का अभाव अधिक कष्टकर था, जिस अभाव को दूर करने के लिए तथा भारतीय जनमानस में जागृति का भाव भरने के लिए आजन्म प्रत्येक क्षण प्रयास किया। उस समय धर्म का स्थान अनेक कर्मकाण्डों, आडम्बरों, पाखण्डों ने ले लिया था, पण्डों की स्वार्थपरता व धूर्तता ने विवेक के ताबूत में कील ठोंकने का अशोभनीय कार्य किया।

कुरीतियाँ, कुप्रथाएँ समाज के अज्ञानता के बीहड़ जंगल को और अधिक भयावह बना रही थी, ऐसे सघन तम में दयानन्दरूपी प्रकाश-स्तम्भ ने अहर्निश, अद्भुत साहस एवं अथक परिश्रम कर रियासतों, नगरों, शहरों, गाँवों में कुम्भकरणी निद्रा में पड़े हुए जनसमूह को जगाने के लिए अभूतपूर्व उद्यम किया।

ईश्वर के प्रति अटूट निष्ठा तथा अभयता (यहाँ अभयता का प्रयोग सहेतुक है, क्योंकि निर्भय तो दुष्ट भी देखे जाते हैं लेकिन वे भी किसी न किसी से अथवा अपने जीवन, परिवार या किसी वस्तु विशेष के प्रति भय युक्त होते हैं। न विद्यते भयं यस्मिन् अभय: तस्य भावोऽभयता) देव दयानन्द की सर्वदा, सर्वथा, सभी के द्वारा अनुकरणीय विशेषताएँ हैं। क्या ऐसी कल्पना भी की जा सकती हैं कि जिसके सभी विरोधी हों, उसकी बात सही है या ग़लत यह सुने या सोचे बिना ही जनसमूह ईंटें, पत्थर बरसा रहा हो फिर भी वह उसी स्थान पर डटकर पौन:पुन्येन उन्हें समझाने का न केवल प्रयास करे, अपितु परमपिता परमेश्वर से उनके कल्याण की प्रार्थना भी सतत करता रहे। आदरणीय भवानी लाल भारतीय जी लिखते हैं कि **'हम जिस गली मोहल्ले में रहते हैं वहाँ यदि लोग हमारा विरोध करने लगें तो हमें बड़ी कठिनाई होती है, लेकिन सत्य और हितकर कहते हुए भी जिसका चहुँ ओर विरोध हो रहा हो, किन्तु फिर न डरे, न हार माने, यह आश्चर्यजनक है।'** जबकि अद्यतनीय भारतीय सनातन धर्म को अपना मूल मानने वाले हिन्दू समाज में यह नित्य देखा जाता है कि कहीं अनुकूलता नहीं

तो उस स्थान को छोड़कर वहाँ से पलायन कर जाना ही श्रेयस्कर समझ कर अपने स्वार्थ की पूर्ति करने लगता है? परन्तु वाह रे दयानन्द तेरी देशप्रेम की लगन कुछ अलग ही थी।

स्वामी जी का ईश्वर के प्रति विश्वास पर्वत के समान अटल एवं समुद्र के तुल्य अथाह गहरा था। सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में प्रत्येक मनुष्य के हित तथा मानवोचित गुणों के आधान के लिए ईश्वर उपासना की विधि तथा लाभ बताते हुए वे लिखते हैं - "जब उपासना करना चाहें तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो कर संयमी होवें।

जब इन साधनों को करता है तब उस का आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्यप्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो आठ पहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है। वहाँ सर्वज्ञादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और द्वेष, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान, अतिसूक्ष्म आत्मा के भीतर बाहर व्यापक परमेश्वर में दृढ़ स्थित हो जाना निर्गुणोपासना कहाती है।

इस का फल- जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूट कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं, इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये।

इस से इस का फल पृथक् होगा परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा, कि पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरायेगा और सब को सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है? और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है। क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रक्खे हैं, उस का गुण भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना, कृतघ्नता और मूर्खता है।"

उक्त के परिप्रेक्ष्य में महर्षि तृतीय समुल्लास और अन्यत्र भी अनेकत्र न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान में बैठने की प्रेरणा देते हैं, जिससे स्व आकलन प्रतिदिन किया जा सके, इसकी अनुपालना नित्य हो, अन्यथा समाज को विद्रूपता से रोक पाना असम्भव है।

जीवन के अन्तिम समय में जब शरीर में असह्य पीड़ा थी तब भी काल, पक्ष, दिवस और समय पूछा और भारतीय परम्परा योगेनान्ते तनुत्यजाम् जैसे उद्घोष की अनुपालना करते हुए-"प्रभो तूने अच्छी लीला की, तेरी इच्छा पूर्ण हो" कहकर प्राण त्यागना, परमपिता परमेश्वर के प्रति उनकी अटूट निष्ठा एवं अद्भुत समर्पण का बेजोड़ उदाहरण है।

ऋषि ने जिस विधि से शरीर त्यागा, वह मानवता के लिए अद्भुत है, वह हमें सन्देश दे रहा है कि कितनी भी विषम परिस्थिति क्यों न हो, अन्तिम काल में व्यक्ति चैतन्य रह सकता है तथा परमेश्वर को प्रणाम कर तथा

उसकी अनन्त कृपाओं के लिए आभार व्यक्त करके, समस्त संसार के कल्याण भाव की मङ्गलकामना के साथ भी अग्रिम यात्रा के लिए प्रयाण किया जा सकता है।

दूसरा अपने परिवार आदि के दायित्व के साथ-साथ स्वार्थ रहित होकर संसार के उपकार में संलग्न होने का उनका सन्देश आज के परिप्रेक्ष्य में अनुपालनीय है। आर्यसमाज के अग्रलिखित इन दोनों ही नियमों- **प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।** तथा- **संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना,** की प्रासङ्गिकता देश, काल, समाज, जाति, धर्म, वर्ण, व्यक्ति की सीमाओं से सर्वथा परे है। ये समस्त संसार के सर्वथा उपयोगी हैं। ये नियम स्वामी जी के सभी के प्रति असीम एवं उच्च प्रेम के परिचायक हैं। हम भी ऋषिवर के आचरण का अनुकरण कर ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नति की सुदृढ़ आधारशिला रख सकते हैं।

इस अङ्क को निकालने में परमपिता ने जो शक्ति दी वह तो अवर्णनीय है ही, लेकिन मेरे जिन विभागीय मित्रों का विशेष अवदान रहा वह भी अनुकरणीय है। **डॉ० वेदव्रत** जी एवं **डॉ० शिवानन्द** जी ने अपने शिष्यों के साथ मिलकर जिस तत्परता से इस अङ्क को प्रकाशन योग्य बनाया, वह विशेषरूपेण मेरे लिए वन्दनीय, प्रशंसनीय हैं। जिन आचार्यों, विद्वानों के आलेख हमें प्राप्त हुए, वह भी थोड़े से समय में, उनके प्रति भी हृदय की गहराइयों से कार्तज्ञ प्रकट करता हूँ। आचार्यवर श्रद्धेय कुलपति **प्रो० सोमदेव** जी के समय-समय पर प्राप्त उत्साहवर्धन-सूत्र हमें सम्बल प्रदान करते रहे हैं, उनका शुभकामना सन्देश भी उसी की एक कड़ी है। गुरुकुल-पत्रिका को प्रकाशित करने में धन आदि की दृष्टि से **गुरुकुल प्रशासन** का सहयोग निरन्तर उपलब्ध है, उनका धन्यवादी हूँ। मुद्रण कार्य को **सैनी प्रिण्टिंग प्रेस** के कर्मचारियों ने शीघ्रता से किया है, उन्हीं के कारण आज यह ज्ञानराशि लिखित रूप में हमारे हाथों में है, एतदर्थ उनका भी अतिशय धन्यवाद।

परमशक्ति से प्रार्थना है कि महर्षि दयानन्द की २०० वीं जयन्ती के अवसर पर गुरुकुल-पत्रिका का यह **महर्षि दयानन्द विशेषाङ्क** हम में दयानन्द की शुद्धता और चैतन्य का सञ्चार कर आनन्द के पथ का पथिक बनने की ओर अग्रसर करे।

श्रद्धानन्द बलिदान दिवस
२३ दिसम्बर, २०२३

ब्रह्मदेव विद्यालङ्कार

अनुक्रमणिका

गुरुकुल-पत्रिका, अङ्क-७५/२, दयानन्द विशेषाङ्क, अक्टूबर- दिसम्बर २०२३, ISSN ०९७६-८०१७ (UGC care listed), पृ० १-४

महर्षि-दयानन्दसरस्वतीनां वैदिकाख्यानव्याख्यानम्

डॉ० मान सिंह

स्वीयायामृग्वेदादिभाष्यभूमिकायां महर्षिदयानन्दसरस्वतीभिः कतिपयानां वैदिकाख्यानानां व्याख्यानं कृतम्, न विद्यते वेदेऽनित्यवस्तूनां प्राणिनां वेतिहास इति च तैः सुतरां सिद्धम्। अत्रैतान्याख्यानानि विचारविषयतामानीयन्ते।

(१) प्रजापतेः स्वदुहितृगमनम् :

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ (ऋ० १.१६४.३३)
शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥ (ऋ०, ३.३१.१)

प्रथममन्त्रो महर्षिदयानन्दसरस्वतीभिरित्थं व्याख्यातः – 'सविता सूर्य्यः सूर्य्यलोकः प्रजापतिसंज्ञकोऽस्ति। तस्य दुहिता कन्यावद् द्यौरुषा चास्ति। यस्माद् यदुत्पद्यते तत्तस्यापत्यवत्' स तस्य पितृवदिति रूपकालङ्कारोक्तिः। स च तां रोहितां किञ्चिदारक्तगुणप्राप्तां स्वां दुहितरं किरणैर्ऋष्यवच्छीघ्रमभ्यध्यायत् प्राप्नोति। एवं प्राप्तः प्रकाशाख्यमादित्यं पुत्रमजीजनद् उत्पादयति। अस्य पुत्रस्य मातृवदुषा पितृवत् सूर्य्यश्च। कुतः? तस्यामुषसि दुहितरि किरणरूपेण वीर्येण सूर्य्याद् दिवसस्य पुत्रस्योत्पन्नत्वात्। यस्मिन् भूप्रदेशे प्रातः पञ्चघटिकायां रात्रौ स्थितायां किञ्चित् सूर्य्यप्रकाशेन रक्तता भवति, तस्योषा इति संज्ञा। तयोः पितादुहित्राः समागमाद् उत्कटदीप्तिः प्रकाशाख्य आदित्यपुत्रो जातः। यथा मातापितृभ्यां सन्तानोत्पत्तिर्भवति, तथैवात्रापि बोध्यम्।

एवमेव पर्जन्यपृथिव्योः पितादुहितृवत् [रूपकालङ्कारः]। कुतः? पर्जन्यादद्भ्यः पृथिव्या उत्पत्तेः अतः पृथिवी तस्य दुहितृवदस्ति स पर्जन्यो वृष्टिद्वारा तस्यां वीर्य्यवज्जलप्रक्षेपणेन गर्भं दधाति। तस्माद् गर्भदोषध्यादयोऽपत्यानि जायन्ते। अयमपि रूपकालङ्कारः।[१]

द्वितीयं मन्त्रं व्याख्यायद्भिस्तैरुक्तम्- वह्निशब्देन सूर्य्यो दुहिताऽस्य पूर्वोक्तैव। स पिता स्वस्या उषसो दुहितुः सेकं किरणाख्यवीर्य्यस्थापनेन गर्भाधानं कृत्वा दिवसपुत्रमजनयदिति।

व्याख्यानमिदं तैरधोदत्तसन्दर्भप्रमाणेन कृतम्-

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद् दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये। तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामध्यैत्, तस्य यद् रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादित्योऽभवत्। (ऐतेरेयब्राह्मणम्, ३.३३.३४)।

प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मानेष सविता। (माध्यन्दिनशतपथब्राह्मणम्, १०.२.२.४)

तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः। (निरुक्तम्, ४.२१) शतपथब्राह्मणेऽप्यन्यत्रोक्तम्-

प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहतिरमभिदध्यौ दिवं वोषसं वा मिथुन्येनया स्यामिति ताꣳ सम्बभूव। (माध्यन्दिनशतपथब्राह्मणम्, १.७.४.१)

---

१ सं० युधिष्ठिरो मीमांसकः, ऋग्वेद-भाष्यम्, प्रथमो भागः (बहालगढम्: रामलाल कपूर न्यास, १९७३), पृ० ३२४-३३८; ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य- विषयः।

अतो महर्षिदयानन्दकृतं व्याख्यानन्तु सर्वथा समीचीनमेव। प्रजापतेः स्वदुहितृगर्भाधानन्त्वत्र केवलमालङ्कारिकमेव, न तु वास्तविकम्।

(२) इन्द्रस्याहल्याजारत्वम्

ऋग्वेदे 'जा॒र आ भग॑म्' (१०.११.६; अथर्ववेदे १८.१.२३) इति मन्त्रेऽहल्यां प्रतीन्द्रस्य जारत्वं सङ्केतितम्। एवमेव शतपथब्राह्मणेऽप्युक्तम् – इन्द्रा॒गच्छे॒ति। गौ॒रावस्कन्दिन्न॒हल्यायै जारे॒ति। तया॒न्ये॒वास्य चरणानि तै॒रे॒नमेतत् प्र॒मुमोदयिषति। (माध्यन्दिनशतपथब्राह्मणम्, ३.३.४.१८)। वस्तुतस्त्वत्राहल्या रात्रिरिन्द्रश्चादित्यः, अहरस्यां लीयत इत्यहल्या रात्रिः, रात्रेर्जरयितृत्वादादित्यस्य जारत्वम्। इन्द्रस्यादित्यत्वमधस्तनैः सन्दर्भैः सुतरां सिद्धम् -

अ॒थ यः स इ॒न्द्रोऽसौ स॒ आदित्यः। (माध्यन्दिनशतपथब्राह्मणम्,८.५.३.२)

ए॒ष ए॒वे॒न्द्रो य॒ एष त॒पति।। (तदेव १.६.४.१८)

असौ वा आदित्य इन्द्रो रश्मयः क्रीडयः। (मैत्रायणीसंहिता, १.१०.१६; काठकसंहिता, ३.६.१०)

उक्तञ्च यास्केन- आदित्योऽत्र जार उच्यते। रात्रेर्जरयिता। स एव भासाम्।"[२] (निरुक्तम् ३.१६)। अत इन्द्रस्याहल्याजारत्वमप्यालङ्कारिकमेव, न तु सत्यभूतम्। अत एव सर्वथोचितमेवास्य प्रसङ्गस्य महर्षि-दयान्दसरस्वतीसम्मतमिदं व्याख्यानम् - इन्द्रः सूर्य्यो य एष तपति, भूमिस्थान् पदार्थांश्च प्रकाशयति। अस्येन्द्रेति नाम परमैश्वर्यप्राप्तिहेतुत्वात्। स अहल्याया जारोऽस्ति। सः सोमस्य स्त्री गोतम इति नाम। गच्छतीति गौरतिशयेन गौरिति गोतमश्चन्द्रः। तयोः स्त्रीपुरुषवत् सम्बन्धोऽस्ति। रात्रिरहल्या | कस्माद्? अहर्दिनं लीयतेऽस्यां तस्माद्रात्रिरहल्योच्यते। स चन्द्रमाः सर्वाणि भूतानि प्रमोदयति स्वस्त्रियाऽहल्यया सुखयति।

अत्र स सूर्य्य इन्द्रो रात्रेरहल्याया गोतमस्य चन्द्रस्य स्त्रिया जार उच्यते। कुतः? अयं रात्रेर्जरयिता। जष् वयोहानाविति धात्वर्थोऽभिप्रेतोऽस्ति। रात्रेरायुषो विनाशक इन्द्रः सूर्य्य एवेति मन्तव्यम्।

(३) इन्द्रवृत्रयोर्युद्धं वृत्रवधश्च

महर्षिदयानन्दसरस्वतीमहोदया अस्मिन्प्रसङ्गे मन्त्रषट्कमृग्वेदीयं प्रस्तौति।[३] सर्वत्र च तैरिन्द्रः सूर्योऽहीत्यपरसंज्ञो वृत्रश्च मेघ इति मत्वा व्याख्या कृता। वर्षकर्मैवात्रेन्द्रस्य वृत्रवधः। वृत्रस्वरूपविषये निर्वचनद्वारेण यास्क एव कथयति- वृत्रो वृणोतेर्वा वर्त्ततेर्वा वर्धतेर्वा। यदवृणोत्तत् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते। यदवर्त्तत तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते। यदवर्द्धत तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते? (निरुक्तम्, २.१७)। तत्र को वृत्र इति स्पष्टयन् स ब्रूते - तत्को वृत्रः? मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। अपां न ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति। अहिवत्तु खलु मन्त्रवर्णा ब्राह्मणवादश्च। (निरुक्तम् २.१६)। अतो नैरुक्तमतानुसारेण तु मेघ एव वृत्रोऽपाञ्च ज्योतिषश्च[४] मिश्रणव्यापारादेव वृष्टिर्जायते; अयं मिश्रीभाव एवौपम्येन मन्त्रेष्विन्द्रवृत्रयुद्धत्वेन वर्णनविषयतां नीतः। शतपथब्राह्मणादिग्रन्थेष्वप्येतादृशमेव युद्धवर्णनमवाप्यते- वृत्रो॒ह वा॒ऽइद॑ꣳ स॒र्वं वृत्वा॒ शिश्ये। य॒दिदम॒न्तरेण द्यावापृथिवी, स य॒दिद॑ꣳ स॒र्वं वृत्त्वा॒ शिश्ये त॒स्माद् वृत्रो ना॒म। तमि॒न्द्रो जघान। (माध्यन्दिनशतपथब्राह्मणम्, १.१.३.४-५)। अन्यत्रापीन्द्रवृत्रसङ्ग्रामस्य वृत्रवधस्य च वर्णनं समुपलभ्यते-

वृत्रं खलु वा एष हन्ति यः सङ्ग्रामं जयति। (मैत्रायणी - संहिता, २.२.१०)

वृत्रमेव जिघांꣳसति यस्सङ्ग्रामं जिगीषति। (काठक-संहिता)

---

२ एवमेव 'स्वसु॑र्जारः शृ॑णोतु नः' (ऋग्वेद, ६.५५.५) इति मन्त्रस्य व्याख्याप्रसङ्गे यास्केन कथितम्- उषसमस्य स्वसारमाह। साहचर्यात्। रसहरणाद्वा (निरुक्तम्, ३.१६)।

३ ऋग्वेदः, १.३२.१,२,५,७,१०.१३। व्याख्यानार्थं द्रष्टव्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ० ३३१-३३३।

४ सूर्यरश्मिजन्यविद्युतः।

अतो महर्षिदयानन्दसरस्वतीभिर्यास्कप्रमाणेनैवेन्द्रवृत्रयुद्धं व्याख्यातम्। युद्धमिदमौपमिकमेव।

ऋग्वेदादेवैतत्सिद्धं यदिन्द्रस्य युद्धानि वस्तुतस्तु मायैव, न तस्याद्यत्वे शत्रुर्वर्तते न च पुरा कश्चिदासीत्-

यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु।

मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं न नु पुरा विवित्से ॥ (१०.५४.२)

अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे (ऋग्वेदः, १०.१३३.२) इत्यादिभिर्मन्त्रैरप्येतदेव प्रमाणितम्। अत एवेन्द्रयुद्धचर्चा तूपमार्थैनैव प्रसृता।

(४) देवासुरसङ्ग्रामः

देवाश्च वा असुराश्च। उभये प्राजापत्याः प्रजापतेः पितुर्दायमुपेयुः। (माध्यन्दिनशतपथब्राह्मणम्, १.७.२.२२) ; **द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च। ततः कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुराः।** (तदेव १४.४.१.१३) इत्यादिभिः शतपथ ब्राह्मणवचनैर्देवाश्चासुराश्चोभयौ प्रजापतिपुत्रा इति ज्ञायते। शतपथब्राह्मणानुसारेण प्राणा वा ऊर्ग्वा देवाः, माया असुराः- **प्राणा देवाः** (६.३.१.१५); **ऊगिति देवा मायेत्यसुराः** (१०.५.२.२०)। ते हि सङ्ग्रामं कर्तुं तत्परा आसन्- **देवासुराः संयत्ता आसन्** (१३.३.४.१)।

महर्षिदयानन्दसरस्वत्यनुसारेण **विद्वांसो हि देवाः**[५] तद्विपरीता अविद्वांसोऽसुराः। एषामुभयेषां परस्परं युद्धमिव वर्ततेऽयमेव देवासुरसङ्ग्रामः। अथवा पुण्यात्मा मनुष्यो देवोऽस्ति, पापात्मा ह्यसुरश्च। एतयोऽपि परस्परं विरुद्धस्वभावाद्युद्धमिव प्रतिदिनं भवति, तस्मादेषोऽपि देवासुरसङ्ग्रामोऽस्तीति विज्ञेयम्। अथवा दिनं देवो रात्रिरसुरः, एतयोरपि परस्परं युद्धमिव प्रवर्तते। अथवा ये प्राणपोषकाः स्वार्थसाधनतत्परा मायाविनः कपटिनो मनुष्यास्तेऽसुराः। ये च परोपकारकाः परदुःखभञ्जना निष्कपटिनो धार्मिका मनुष्यास्ते देवा विज्ञेयाः। एतेषामपि परस्परं विरोधात् सङ्ग्राम इव भवति। इत्थं रूपकालङ्कारेण वेदे देवासुरसङ्ग्रामकल्पना।[६]

(५) कश्यपकथा

ब्रह्मवैवर्तादिषु ग्रन्थेषु कश्यपकथा प्राप्यते। तदनुसारेण कश्यपो नाम मरीचिपुत्रः कश्चिदृषिरासीत् तस्मै दक्ष प्रजापतिना त्रयोदशकन्या विवाहविधिना दत्ताः। तत्सङ्गमे दितेर्दैत्याः, अदितेरादित्याः, दनोर्दानवाः, एवमेव कद्रवाः सर्पाः, विनतायाः पक्षिणः, तथान्यासां सकाशाद्वानरर्च्छवृक्षघासादय उत्पन्नाः। वस्तुतो वैदिकवाङ्मये शतपथब्राह्मणे कश्यपवर्णनमित्थं समुपलभ्यते-

स यत्कूर्मो नाम। प्रजापतिः प्रजा असृजत, यदसृजताकरोत् तद् यदकरोत् तस्मात्कूर्म्मः, कश्यपो वै कूर्म्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति। (माध्यन्दिनशतपथब्राह्मणम्, ७.५.१.५)

एतदनुसारेण तु प्रजापतिर्जगतस्स्रष्टैव कश्यपः। तस्मादुत्पत्तेरेवेमाः सर्वाः प्रजाः काश्यपा इत्युच्यन्ते। कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति निरुक्त्या[७] पश्यकः (सर्वद्रष्टा) एव कश्यप आद्यन्ताक्षरविपर्य्यात्। स एव प्रजासृष्टिकर्मकर्तृत्वात् कूर्म्म इत्युच्यते। अत एव ब्रह्मवैवर्तादिग्रन्थेषु सम्प्राप्तेतिहासकथा तु कल्पनाप्ररोह एव।

श्रीमतां महर्षिदयानन्दसरस्वतीनां दृढं मतमिदं यद् वेदेऽनित्यानां लौकिकानाञ्च वस्तूनां जनानां वा कोऽपीतिहासो न विद्यते। मतञ्चेदं सर्वथा वैदिकपरम्परानुमोदितं वर्तते। वस्तुतस्त्वपौरुषये वेदे केषामपि लौकिकानां मानवानां, घटनानां

---

५ तुलनीय माध्यन्तिनशतपथब्राह्मणम् ३.७.३.१०, विद्वांꣳसो हि देवाः।

६ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ० ३३५ - ३३६।

७ तैत्तिरीयारण्यकम् १.८.८ : कश्यपः पश्यको भवति। यत् सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्।

पदार्थानां वेतिहासस्य किमप्यौचित्यं नास्ति। लोकस्यैव वेदानुगामित्वं, न तु वेदस्य लोकानुगामित्वम्। इदमेव स्पष्टयता मनुना भणितं यत्सृष्टेरादौ परमात्मा हिरण्यगर्भेण वेदशब्देभ्य एव समेषां पदार्थानां प्राणिनाञ्च पृथक् पृथक् नामानि कर्माणि च पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।[८] 'नैरुक्तसम्प्रदायस्तु वेदान्तर्गतमितिहासमाख्यानजातञ्चार्थवाद एव मनुते न तु सत्यभूतम्। आचार्ययास्क-अनुसारेण त्वृषेर्दृष्टार्थस्याख्यानेभ्यः प्रीतिर्भवति।[९] अतः परमेश्वरेण लोकजनरुचिसम्पादनार्थं प्रायो मन्त्रेष्वाख्यानसंयोजना कृता। अनेन दृष्टार्थस्य संयुक्तादाख्यानात्पृथक्त्वं सुतरां सिद्धम्। अतो मन्त्रेष्वितिहास आख्यानानि वा केवलं रूपकात्मकान्यर्थवादरूपाणि सन्ति। अस्मिन् वा विषये[१०] वररुचिदुर्ग[११] स्कन्दस्वामि[१२] प्रभृतीनामाचार्यणामपि मतमेतादृशमेव। आचार्ययास्कस्त्वेतादृशैरितिहासैराख्यानैर्वा सम्बद्धानां पात्राणां वैकल्पिकीं व्याख्यां प्रस्तौति।[१३]

---

८ मनुस्मृतिः १.२१ : सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे॥

९ निरुक्तम्, १०.१०.४६ : ऋषेर्दृष्टार्थस्य

१० निरुक्तसमुच्चयः (सं युधिष्ठिरो मीमांसकः, अजमेरनगरम्: प्राच्यविद्याप्रतिष्ठानम्, द्वितीय संस्करणम्, सं० २०२२), पृ० ८५-८६ : एवमितिहासपक्षे योजना। नैरुक्तपक्षे तु पुरुरवा मध्यमस्थानः। वाय्वादीनामेकत्वात् पुरु रौतीति पुरुरवाः उर्वशी विद्युत्। उरु विस्तीर्णमन्तरिक्षं दिव्यत इति उर्वशी; पृ० ८८ : एवमैतिहासिकपक्षे योजना। नैरुक्तपक्षे तु यमी मध्यमा वाक्। यमश्च मध्यमस्थानः।

११ वृत्तिः, निरुक्तम्, १०.२६ : एतस्मिन्नर्थे इतिहासमाचक्षते आत्मविदम् इतिवृत्तं परकृत्यर्थवादरूपेण यः कश्चिदाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिको वार्थ आख्यायते दिद्युदितार्थावभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते। स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो स नित्यमविवक्षितस्वार्थस्तदर्थप्रति-पत्तॄणामुपदेशपरत्वात्।

१२ टीका, निरुक्तम्, २.१२ : एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्त्तव्या। एषः शास्त्रे सिद्धान्तः। औपचारिको मन्त्रेष्वाख्यानसमयः। परमार्थे नित्यपक्ष इति सिद्धम्।

१३ उदाहरणार्थं द्रष्टव्यं निरुक्तम्, २.१६; तत्को वृत्रः? मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति। अस्मिन् विषये विस्तरार्थं द्रष्टव्यौ सुधीरकुमारगुप्तानां Ancient Schools of Vedic Interpretation. (श्रीगङ्गानाथ झा केन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठस्य शोधपत्रिका, प्रयागः अङ्कः १५, भाग: १, पृ० १४९) Validity of Histroical and Legendary Interpretation of Vedic Stanzas (भारतीशोधसारसङ्ग्रहः, जयपुरम्, अङ्क : २ एप्रिल-जुलाई १८७१, पृ० ५१-६२) इति लेखौ; अस्माकं Yāska on Vedic Exegesis (श्रीगङ्गानाथ झा - केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठस्य शोधपत्रिका प्रयागः, अङ्कः ४३, जुलाई० दिस० १९८७, पृ० ४३-४८, "वैदिक आख्यान और आचार्य यास्क" (स एव, अङ्कः ४७, भाग:-१-४, जन० दिस० १९९१) इति लेखौ; द्रष्टव्यः स्वामिविद्यानन्दसरस्वतीनां "वैदिक आख्यानों का वास्तविक स्वरूप" (प्रह्लाद स्मारक व्याख्यानमाला, भाग: १, दिल्ली: ईष्टर्न बुक लिंकर्स, १९८२, पृ० ४९-६३) इति लेखः; पं० शिवशङ्करकाव्यतीर्थानां वैदिक-इतिहासार्थ निर्णय (सं० ब्रह्मदेवो विद्यालङ्कारः, कुरुक्षेत्रम्, २००९) इति ग्रन्थः; रामनाथवेदालङ्काराणाञ्च वेदभाष्यकारों की वेदार्थ प्रक्रियाएँ (होशिआरपुरम्: वि०वि० तथा प्राच्यविद्या - शोध संस्थानम्, १९८०, पृ० २९-४७) इति ग्रन्थः।

गुरुकुल-पत्रिका, अङ्क-७५/२, दयानन्द विशेषाङ्क, अक्टूबर- दिसम्बर २०२३, ISSN ०९७६-८०१७ (UGC care listed), पृ० ८५-९१

दयानन्दस्वामिनो भाष्यम् - कियद्ब्राह्मणग्रन्थानुलोमम्

प्रो. रविप्रकाश आर्यः

अस्मिन्नसारे खलु संसारे समेषां शेमुषीमतां मूर्धाभिषिक्तो ललामभूतो विद्वद्रत्नसमामाख्यानीयोऽनुपहतमतिर्यतीश्वर ऋषिर्दयानन्दो वेदभाष्यकारेषु विशिष्टतममास्पदं भजते। न केनापि वैदिकसाहित्ये कृतभूरिश्रमेण विदुषा दयानन्दस्वामिनो वैशिष्ट्यगर्भं कार्यजातं विस्मर्तुं शक्यते। महर्षेर्भाष्यमशेषयजुर्वेदम् ऋग्वेदञ्च ७. ६१. २ – यावद् वेवेष्टि। तथापि जनैः परच्छिद्रान्वेषणात्मिका वृत्तिः केन निवार्य्यते। साम्प्रतिकैर्दोषैकदृग्भिर्विद्वद्भिर्दयानन्दभाष्यस्य वैशिष्ट्यं जानानैरपि प्रत्यक्षतो नाङ्गीक्रियते। तत्तेषामाग्रह एवेति मन्ये। ऋषीणां प्राक्तनाचार्यैः तात्कालिकैश्च पूर्वाग्रहवशात् पक्षपातगर्भितानि विरचितानि सर्वाणि भाष्याणि व्याख्यानानि च सप्रमाणं खण्डितानि। तत्र च सत्यसनातनव्याख्यानग्रन्थप्रतिकूलानामनर्थकानां वेदव्याख्यानानां निवृत्त्यै[1] वेदानां सर्वविद्यानिधानत्वस्य प्रतिपादनाय[2] सत्यविद्याप्रकाशाय वेदानां यथार्थरहस्योद्घाटनाय[3] वेदार्थे सद्यः सिद्धिलम्भनसौकर्याय सकलवेदविरुद्धमतनिरासाय[4] वेदेषु अज्ञानान्धकारविज़ृम्भितनिविडभ्रमच्छेदाय[5] च तेन स्वीयं नूतनमार्याणां सुन्यृषीणां सनातनीं[6] व्याख्यापद्धतिमनुसृत्यान्वर्थं भाष्यं व्यरचि। तस्य भाष्यस्य आर्षप्रमाणान्वयो ब्राह्मणग्रन्थानुलोमता च प्रतिपादिता। तद्यथा स्वीये ग्रन्थरत्ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायाम्-

यानि पूर्वैर्देवैर्विद्वद्भिर्ब्राह्मणमारभ्य याज्ञवल्क्यवात्स्यायनजैमिन्यन्तैर्ऋषिभिश्चैतरेय-शतपथादीनि भाष्याणि रचितान्यासन् तथा यानि पाणिनि-पतञ्जलि-यास्कादि-महर्षिभिश्च वेदव्याख्यानानि वेदाङ्गाख्यानि कृतानि एवमेव जैमिन्यादिभिर्वेदोपाङ्गाख्यानि षट् शास्त्राणि, एवमुपवेदाख्यानि तथैव वेदशाखाख्यानि रचितानि सन्ति। तेषां संग्रहमात्रेणैव सत्योऽर्थः प्रकाश्यते। न चात्र किञ्चिदप्रमाणं नवीनं स्वेच्छयाऽरच्यन्त इति[7]। तथा च प्रतिज्ञाविषयेऽपि जुगुम्फ—

यदास्मिन्नीश्वरानुग्रहेणर्षिमहामुनिभिरार्य्यैर्वेदार्थगर्भितेष्वैतरेयब्राह्मणादिषूक्तप्रमाणान्विते मया कृते भाष्ये प्रसिद्धे जाते सति सर्वमनुष्याणां महान् सुखलाभो भविष्यतीति विज्ञायते।[8] इति स्वीये यजुर्वेदभाष्यारम्भे च -

प्रमाणैर्निबद्धशतपथनिरुक्तादिभिरपि ॥ २ ॥ इति।

तथापि इदानीन्तनविद्वद्भिर्दयानन्दस्य प्रतिज्ञेषा निराक्रियते। तेषाम्मतेन स्वामी दयानन्दः स्वकीयं भाष्यं ब्राह्मणग्रन्थाननुसृत्य विधातुं प्रत्यभिज्ञपत् परन्तु तन्-निर्वहणे सर्वथाऽसमर्थोऽभूत्। दयानन्दानुयायिनोऽपि च तस्य प्रतिज्ञाविषये शङ्कासङ्कुलमनसस्तिष्ठन्ति। अतः सम्प्रति प्रश्नोऽयमुज्जृम्भते- अपि दयानन्दस्वामिनो भाष्यं सर्वथा ब्राह्मणग्रन्थानुकूल्यं भजति न वेति? अत्र सन्देहनिवृत्त्यर्थं कथ्यते यद्यत्र महर्षिणा स्वीयभाष्यस्य ब्राह्मणग्रन्थानुलोमता प्रत्यपादि, तत्रैव ब्राह्मणानां परतःप्रामाण्यमप्यङ्गीकृतम्[9] तथा च तेषां वेदानुकूलतया युक्तिप्रमाणाभ्यामेव प्रामाण्यं स्वीकृतम्।[10] तत्रापि भगवता दयानन्देन स्वीये भाष्ये

---

१ (क) स्वा० द०, ऋ० भा० भू०, भाष्यकरणशङ्कासमाधानविषये, पृ० ३५२. (ख) स्वा० द०, ऋ० भा० भू०, प्रतिज्ञाविषये, पृ० ३७१.

२ स्वा० द०, ऋ० भा० भू०, भाष्य करणशङ्कासमाधानविषये, पृ० ३६९.

३ स्वा० द०, ऋ० भा० भू०, प्रतिज्ञाविषये, पृ० ३७१.

४ तत्रैव.

५ द्र०, स्वा० द०, भ्रान्तिनिवारणे।

६ द्र०, स्वा० द०, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकारम्भे श्लो० ६.

७ स्वा० ८०, ऋ० भा० भू०, भाष्यकरणशङ्कासमाधानविषये, पृ० ३५२.

८ स्वा०, ५०, ऋ० भा० भू०, प्रतिज्ञाविषये, पृ० ३७२.

९ नैतेषां वेदवत्प्रामाण्यं कर्तुं योग्यमस्ति। कुतः? ईश्वरोक्ताभावात्तदनुकूलतयैव प्रमाणार्हत्वाच्चेति। परन्तु सन्ति तानि परतः प्रमाणयोग्यान्येवेति। स्वा० द०, ऋ० भा० भू०, वेदसंज्ञाविषये, पृ० ९३.

ब्राह्मणानां यज्ञव्याख्यानपराः संकेताः किं वा व्याख्याभाग एवोररीकृतः, न तु यज्ञप्रक्रिया आहोस्विद् अर्थवाद इति। तद्यथा तेन स्वीये आर्याभिविनये ग्रन्थे वेदब्राह्मणनिरुक्तादीनां प्रमाणनिरूपणावसरे ब्राह्मणानां यज्ञक्रियां विहाय व्याख्याभाग एव (यथा - गणपतिर्वै ब्रह्म, बृहस्पतिर्वै ब्रह्म, आपो वै ब्रह्म इत्यादयः) उपन्यस्तः।[११] दयानन्दमहाभागो ब्राह्मणानां समग्रं कर्मकाण्डं युक्तिसिद्धं नामंस्त। स्वीय-ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायां ब्राह्मणानामनावश्यकं कर्मकाण्डं यज्ञप्रक्रियां वा खण्डयन् स आचष्ट- **यद्यदावश्यकं युक्तिसिद्धं तत्तत्कर्तव्यं नेतरत्। तद्यथा भूमिं खनित्वा वेदी रचनीया.........परन्त्वेवं प्रणीतायां रक्षितायां पुण्यं स्यादेवं पापमिति यदुच्यते, तत्र पापनिमित्ताभावात्सा कल्पना मिथ्यैवास्ति। किन्तु यज्ञसिद्धयर्थं यद्यदावश्यकं युक्तिसिद्धमस्ति तत्तदेव ग्राह्यम्। कुतः? तैर्विना तदसिद्धेः**।[१२] इति। तथा च भ्रान्तिनिवारण इति ग्रन्थेऽपि महेशचन्द्रन्यायरत्नस्याक्षेपान्निराकुर्वन्नसौ वेदस्य प्रामाण्ये एव कर्मकाण्डस्य प्रामाण्यं जग्राह, स्वाभिमतकर्मकाण्ड-संस्कारादीनधिकृत्य स्वप्रणीतसंस्कारविध्यादयः ग्रन्थाश्च तेन समुद्धृताः।[१३]

अपरञ्च दयानन्दः कर्मकाण्डं ब्राह्मणानां मुख्यार्थत्वेन नैवं मेने।[१४] अत एव स सायणाचार्यस्याप्यत्यधिकक्रियाकाण्डतत्परतां नासहत। तद्यथा भाष्यकरणशङ्का-समाधानविषये-

सायणाचार्येण वेदानां परममर्थमविज्ञाय सर्वे वेदाः क्रियाकाण्डतत्परा सन्तीत्युक्तम्। तदन्यथास्ति।[१५] इति।

ऋषिर्दयानन्दो युक्तिसिद्धं वेदादिप्रमाणानुकूलं मन्त्रार्थानुसृतमेव ब्राह्मणोक्तं विनियोगं स्वीचकार।[१६] अपरञ्च पूर्वमेव ब्राह्मणपूर्वमीमांसाश्रौतसूत्रादिषु कर्मकाण्डस्य विनियोजितत्वात् पुनरुक्तपिष्टपेषणदोषापत्तेर्निवारणार्थं स्वीये आम्नायभाष्येऽनुपहतमतिना मुनिना कर्मकाण्डविषयो नाम्नायि। तस्य च शब्दार्थतो वर्णनमेव विधातुं प्रतिजज्ञे।[१७] परन्तु दयानन्दस्य कथनमात्रमेवैतत् प्रतिभाति। न कुत्रचिदपि भाष्ये

---

१० ये स्वतः प्रमाणभूता मन्त्रभागसंहिताख्याश्चत्वारो वेदा उक्तास्तद्भिन्नास्तद्व्याख्यानभूता ब्राह्मणग्रन्था वेदानुकूलतया प्रमाणमर्हन्ति। स्वा० द०, ऋ० भा० भू०, ग्रन्थप्रामाण्याप्रमाण्यविषये, पृ० ३००. तत्रैव च- "एता ईश्वरोक्ता वेदास्तद्व्याख्यानमया ब्राह्मणादयो ग्रन्था आर्षा वेदानुकूलाः सत्यधर्मविद्यायुक्ता युक्तिप्रमाणसिद्धा एव मननीयाः सन्ति।"

११ परन्तु वेदभाष्य में यथावत् विस्तारपूर्वक परमार्थ और व्यवहारार्थ ये दोनों अर्थ सप्रमाण किये जायेंगे। जैसे- 'तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायु०' (यजु०, ३२.१) इत्यादि यजु० संहिता प्रमाण। 'इन्द्रं मित्रं वरुणम्०' (ऋ०, १.१६४.४६) इत्यादि ऋ० संहिता प्रमाण | 'बृहस्पतिर्वै ब्रह्म' (ऐत० ब्रा०, १. १३); 'गणपतिर्वै ब्रह्म' (श० ब्र०, ३. १. ४. १५) ; 'प्राणो वै ब्रह्म' (श०, १४. ६.१०.२), आपो वै ब्रह्म' (श०, १४. ६. १०. २); 'ब्रह्म ह्यग्निः' (श०, १.५.१.११) इत्यादि शतपथ, ऐतरेय ब्राह्मणादि प्रमाण और 'महान्तमेवात्मानम्०' (नि०, १४.१) इत्यादि निरुक्तादि प्रमाणों से परब्रह्म अर्थ लिया जाता है। दयानन्दीय-लघु ग्रन्थसंग्रह, सम्पा० युधिष्ठिर मीमांसक,आर्याभिविनय, पृ० ४५.

१२ द्र० स्वा० द०, ऋ० भा० भू०,वेदविषय, पृ० ९०.

१३ तथा कर्मकाण्ड के विषय में यह उत्तर है कि मेरा मत वेद पर है। इसलिये जो-जो कर्मकाण्ड वेदानुकूल है, उस सबको मानता हूँ, उससे विरुद्ध को नहीं। क्योंकि वे (जो) ग्रन्थ मनुष्यों ने अपने स्वार्थ साधन के लिये रच लिये है, वे वेद युक्ति वा प्रमाण से सिद्ध नहीं हो सकते। जो-जो संस्कार (कर्मकाण्ड) आदि में मानता हूँ, वह सब मेरी बनाई हुई वेद भूमिका अङ्क ३ तथा संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में देखना चाहिये। दयानन्दीय - लघु ग्रन्थसंग्रह, भ्रान्ति निवारण, पृ० १९९.

१४ स्वा० द०, ऋ० भा० भू० वेदविषये।

१५ द्र० स्वा० द०, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायाम्, पृ० ३५२.

१६ तस्माद्युक्तिसिद्धो वेदादिप्रमाणानुकूलो मन्त्रार्थानुसृतस्तदुक्तोऽपि विनियोगो गृहीतुं योग्योऽस्ति। स्वा० द०, ऋ० भा० भू०, प्रतिज्ञाविषये, पृ० ३७१.

१७ अत्र वेदभाष्ये कर्मकाण्डस्य वर्णनं शब्दार्थः करिष्यते। परन्त्वेतैर्वेदमन्त्रैः कर्मकाण्डविनियोजितैर्यत्र-यत्राग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तं यद्यत् कर्त्तव्यं तत्तदत्र विस्तरतो न वर्णयिष्यते। कुतः? कर्मकाण्डानुष्ठानस्य ऐतरेयशतपथ-ब्राह्मणपूर्वमीमांसाश्रोतसूत्रादिषु यथार्थं विनियोजितत्वात् पुनस्तत्कथनेनानृषि-कृतग्रन्थवत् पुनरुक्त-पिष्टपेषणदोषापत्तेश्चेति। स्वा० दयानन्दः, ऋ० भा० भू०, प्रतिज्ञाविषये, पृ० २७१.

कर्मकाण्डस्य शब्दार्थतोऽपि वर्णनं समुपलभ्यते। अत्रेदं ध्यातव्यं यद्यथा ब्राह्मणानामैतिहासिकाख्यानानामुपलक्षणत्वं प्रतीकार्थः वा महर्षिणा गृहीतः[१८] तथैव कर्मकाण्डस्यापि रूपकत्वमुपलक्षणत्वं वा संस्कारविधौ पदे-पदे तत्र ऋषिणा निर्दिष्टम्।[१९] तस्य मतेन यज्ञप्रक्रिया कर्मकाण्डं वा कस्यापि परोक्षार्थस्य प्रतिपादकं बाह्यं साधनम् एव। अत एव तेनोट्टङ्कितम्-

उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने वाला, ज्ञानी = सब पदार्थों को जानने वाला, ये दोनों होमादि बाह्य क्रिया न करें।[२०]

नायं यज्ञानुष्ठानस्य विकल्पो दयानन्दस्य कल्पना-प्रसूतः। अपितु ब्राह्मणेष्वपि अनेकत्र य उ चैनं वेदेत्युक्त्वा कर्मकाण्डानुष्ठानस्य यज्ञस्य वा तत्त्वतो ज्ञानस्य तुल्यमेव फलं निर्दिष्टम्। ब्राह्मणग्रन्थेष्वेव कर्मकाण्डस्य विभिन्नसंकेतैर्व्याख्यातत्वात् दयानन्दस्वामिना ब्राह्मणग्रन्थेषु यज्ञव्याख्यानिमित्तेन प्रसङ्गानुषक्तो मन्त्रव्याख्याभाग एव स्वीये भाष्ये स्वकीयव्याख्यानपुष्ट्यर्थं प्रमाणत्वेनोपन्यस्तः। तावत्यानि कानिचित् प्रमाणानि निदर्शनार्थमधस्तात् समुपस्थाप्यन्ते। तद्यथा–

उर्गरसः[२१]। श०, ५.१.२.८.

श्रीर्हि पशवः[२२]। श०, १.६. १. १७.

प्रजा वै पशवः[२३]। श०, १.६. १. १७.

यज्ञो वै वसुः[२४]। श०, १, ७. १. ९.

सविता वै देवानां प्रसविता[२५]। श०, १.१.२.१७.

वीर्यं वा एतद्राजन्यस्य यद्बाहू[२६]। श०, ५. ४. १. १७.

ज्योतिर्हि हिरण्यम्[२७]। श०४. ३.१.२१.

प्रतिष्ठा वै धर्त्रम्। वायुरु सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा तदेव तद्रूपमुपदधाति। स वै वायुमेव प्रथममुपदधाति वायुमुत्तमं वायुनैव तदेतानि सर्वाणि भूतान्युभयतः परिगृह्णाति।[२८] २८ श०८. ४.१.२६.

प्राणो वा अङ्गिराः[२९]। श० ६.५ २. ३; ६.३.७.३.

वृषा पूषा[३०]। श० २. ५. १. ११.

---

१८ भाष्यस्यापूर्वत्वे दृष्टान्ताः संक्षेपतोऽन्येपि लिख्यन्ते - तत्र सत्येष्वार्थेषु सनातनग्रन्थेषु रूपकालङ्कारेण सत्यविद्याप्रकाशिकाः प्रमाणयुक्तिसिद्धा अनुत्तमा बहव्यः कथा लिखिताः सन्ति। तासां मध्यादिग्दर्शन- वस्काचित् कथा अन वेदभाष्यभूमिकायां मयोल्लिखिताः, यासामज्ञानादाधुनिक पुराणग्रन्थेषु भ्रान्त्या मनुष्यैस्ता अन्यथैव लिखिता उपदिश्यते भूयन्ते च। तु० ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायां ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य विषयः।

१९ विशेषप्रतिपत्त्यर्थं ऋषिकृता "संस्कारविधिः" द्रष्टव्या।

२० द्र० संस्कारविधिः, प्रथम संस्करणम्, १९३२, गृहस्थाश्रमप्रकरणे, पृ० ११८. तथा च मीमांसकयुधिष्ठिरेणापि 'वैदिक सिद्धान्त मीमांसा' इति ग्रन्थे ८० पृष्ठे उद्धृतम्। तु० - शां० आ० ४-५, तद्ध स्मैतत्पूर्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं न जुहवाञ्चक्रुः ॥

२१ द्र० उर्जे इत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, १. १, पदार्थे।

२२ द्र० पशूनित्येतस्य व्याख्याने, यजु०, ३१. २२। ऋ० भा० भू०, सृष्टिविद्याविषये।

२३ तत्रैव.

२४ वसोः इत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, १. २, पदार्थे। यजु०, १.३ पदार्थे च।

२५ सवितेत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, १.३ ; पदार्थे।

२६ बाहुभ्यामित्येतस्य व्याख्याने, यजु०, १. १०, पदार्थे।

२७ हिरण्यपाणिः इत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, १.१६, पदार्थे।

२८ धमित्येतस्य व्याख्याने, यजु०, १.१८. पदार्थे।

२९ अङ्गिरसामित्येतस्य व्याख्याने, यजु०, १.१८ पदार्थौ ऋ०, १. ५१. २ पदार्थे च।

प्रजापतिर्वै कः[31] । ३२ श० ७. ३.४. ७.

यज्ञो वै विष्णुः[32] । श० १.१.२.१३.

सर्वं वै सहस्रं सर्वस्य दाताऽसीत्यादि[33] । श० ७. ५. ३. २.

श्रीर्वै सोमः[34] । श० ४.१. ३. ९.

श्रीर्वै राष्ट्रं श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः[35] । श० १३. १.५. ४.

वीर्य्यं वै वज्रः[36] । श० ७. ३. १.१९.

वृत्तो ह वा इदं सर्वं वृत्वा शिश्ये। यदिदमन्तरेण द्यावापृथिवी। स यदिदं सर्वं वृत्वा शिश्ये तस्माद् वृत्रो नाम।[37] श० १.१.३.४.

द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनम्[38] । श० १४.३.२.८.

पयस्वती रसवती[39] । श०, १.२.५. ११.

यज्ञो वै विष्णुस्तस्येयमेव शिखास्तुपः[40] । श०, १. ३. ३. ५.

प्राणी व मित्रोऽपानो वरुणः[41] । श०,८.२.४. ६.

कतमे वसव इति? अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसवः, एतेषु हीदं सर्वं वसु हितम् .... द्वादश मासाः संवत्सरस्यैत आदित्याः, एते हीदं सर्वमाददाना यन्ति, तद्यदिदं सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति।[42] श० १४. ६. ९.४-६.

रश्मयो ह्यस्य विश्वेदेवाः[43] । श० ३. ७. ३.६.

एवमेतादृशाः शतशोप्यधिकाः प्रयोगास्तत्र उद्धृताः सन्ति। इत्थं पुरस्तादुपन्यस्तैर्प्रयोगैर्धारणेयं द्रढीयसी भवति यद् व्याख्याभागः (यच्च ब्राह्मणानां सर्वस्वम्) एव दयानन्देन प्राधान्येन गृहीतः। तथा च दयानन्दस्य भाष्यं ब्राह्मणग्रन्थानां व्याख्याभागस्याधिक्येनानुलोम्यं भजति। अत्र निदर्शनार्थं दयानन्दभाष्यस्य ब्राह्मणव्याख्यया सह तुलना उत्तरत्र प्रस्तूयते -

---

३० पूषणः इत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, १२४ पदार्थे।

३१ कस्मं इत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, २५.१३; ऋ० भा० भू० ; ईश्वरप्रार्थनाविषये

३२ यज्ञात् इत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, ३४.७; ऋ० भा० भू०, वेदोत्पत्तिविषये

३३ सहस्रं इत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, ३.१.१ ऋ० भा० भू०, सृष्टिविद्याविषये

३४ श्रीः इत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, ३१.२२, ऋ० भा० भू०, सृष्टिविद्याविषये

३५ तत्रैव

३६ वज्री इत्येतस्य व्याख्याने, ऋ०, १.३२. १, ऋ० मा० भू०, ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषये.

३७ वृत्रस्येत्येतस्य व्याख्याने, ऋ०, १.३२.१०, ऋ० भा० भू०, ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषये,

३८ द्यौः इत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, १.२६ पदार्थे।

३९ पयस्वतीत्येत व्याख्याने, यजु०, १.२७ पदार्थे।

४० स्तुप : इत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, २. २ पदार्थे।

४१ मित्रावरुणौ इत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, २. ३ पदार्थे।

४२ 'वसवः', 'रुद्रां', 'आदित्याः' इत्येतेषां व्याख्याने, यजु०, २. ५, पदार्थे।

४३ विश्वेदेवेभिः इत्येतस्य व्याख्याने, यजु०, २. २२ पदार्थे।

दयानन्द - भाष्यम्	ब्राह्मणव्याख्यानम्
पितृ - पालन हेतुभ्यः ऋतुभ्यः ।यजु०, २. ७.	ऋतवो वै पितरः। श०, २.५.२.३२,
योनिः – यज्ञे। यजु०, २.६.	यज्ञो वा ऋतस्य योनिः। श०, १.३० ४. १३.
प्राण:-(१)सर्वशरीरगामी वायुः। ऋ०, १.६६.१. जीवनहेतु वायुः। यजु०, १८.२२. शरीरस्थो वायु-विशेष:। यजु०, ६.२०. जीवन-मूलो वायुः। यजु०, २२.३३., तु० यजु०, १३५८; ९.२१.	(१) प्राणो मातरिश्वा। ऐ०, २.३८. यो वै प्राणः स वातः। श०,५. २. ४. ९. वायुर्वै प्राणः। कौ०,८.४.
(२) शरीराद् बाह्यदेशं यो वायुर्गच्छति सः। अथर्व: १५. ५९. ऋ० भा० भू०, पृ० १०४. यः अभ्यन्तराद् बहिर्निस्सरति तस्मै (वायवे) यजु०, २२.२३	(२) बहिर्हिः प्राणः १ तां०, ७६. १४.
(३) प्राणिति जीवयतीति प्राणो हृदयस्थो वायुस्तस्मै। यजु०, ७.२७. हृदिस्थो वायुः। यजु०, १८. २.	(३) प्राणो हृदये (श्रितः)। तै०,३.१०.८.५
यज्ञ: - (१) अध्ययनाध्यापनादिकम्। ऋ०, ४.३३.३. सर्व-विद्यामयम्। ऋ०, १.१०५.४.	(१) ब्रह्म वै यज्ञः। ऐ०, ७.२२. ब्रह्म हि यज्ञः। श०, ५.३. २.४; तु० श०, ३.१.४ १५. एषा त्रयी विद्या (= ऋक् साम यजूंषि) यज्ञः। श०, १. १. ४. ३.
(२) सर्वैः पूजनीयो जगदीश्वरः। ऋ०, २.३६.२ व्यापक: परमेश्वरः। यजु०, २२. ३३. सम्पूजनीयं (ईश्वरम्) यजु०, ३१. ९.	(२) प्रजापतिर्यज्ञः। ऐ०,२.१७; तु० श०, १. १. १. १३; १. ५. २. १७ ; तं०, ३. २.३. १. गो० उ०, ३.८; ४. १२. एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत् प्रजापतिः श०, ४. ३. ४.३; तु०, ११.६.३.९. यज्ञ उवं प्रजापतिः ।कौ०, १०. १.१३. १.
अत्रिः - अविद्यमानत्रिविधदु:खः(विद्वज्जनः) ऋ०, ५.७८. ४. प्राप्तविद्य:(विद्वज्जनः) ऋ०, ५. ७४. १. सुखानामत्ता भोक्ता (विद्वज्जनः) ऋ०, १.३९.६.	तद्धैतद्देवाः। श०, १. ४. ५. १३. तथा च विद्वांसो वै देवाः।श०ब्रा०, ३.७.३.१०.
अदितिः – कारणरूपेणाविनाशिनी भूमि:। यजु०, २५. ४५ ; तु० यजु०, २१. ५। १८. ३०. प्रखण्डितां विद्यां पृथिवीं वा। ऋ०, ६. ५१. १ ; तु० ऋ०, १. २४. १; २. २९. ३.	इयं वै पृथिव्यदितिः। श०, १. १.४.५ ; तु० श०, २. २. १. १९ ; ३. ३. १.४ ; ५. ३. १. ४ इयं (पृथिवी वा अदितिः। कौ०, ७. ३; तु० गो०, ३. १. २५; तै० १. १. ६.५.
अनुष्टुभ् - मयानुष्टोभते सा। यजु०,२३. ३३.	अनुष्टुबनुस्तोभनात्। दे० ब्रा०, ३. ७.

दयानन्द-भाष्यम्	**ब्राह्मण-व्याख्यानम्**
अश्वः - अश्नुते व्याप्नोति सर्वं जगत्सोऽश्व ईश्वरः। ऋ० भा०भू०, पृ० ३५७.	अश्वो यत् ईश्वरो वा अश्वः।श०, १३. ३. ३. ५.
हविष्कृत् – हविः करोति अनया वेदवाण्या सा हविष्कृद् वाक्। यजु०, १. १५.	वाग्वै हविष्कृत्। वाचमेवंतद्विसृजते। श०, १.१.४.११.
तनूः - शरीरवत्तस्य अग्नेः भौतिकस्य संयोगेन विस्तृतः यज्ञः भवति। यजु०, १. १५.	यज्ञो हि तेनाग्नेस्तनूः। श०,१.१.४.८.१
क्रूरम् – कृन्तन्त्यङ्गानि यस्मिन् तस्य युद्धस्य। यजु०, १.१८.	संग्रामो वै क्रूरम्। श०, १.२. ५. १९.
सरस्वती - वेदविद्या संस्कृता वाक्।ऋ०, १.३.११ ; तु० ऋ०, ७. ४०. ३ ; ३. ५४. १३. ; यजु०, २०.५५ ; २०.८४.	वाग् वै सरस्वती। श०, ७.५.६ १. ३१ ; तु० श०, २.५.४. को ०, ५. २, तां०, ६. ७७, तं०, १.३. ४. ५ ;गो० उ०, १. १२०.
सोमः -(१)सुवति चराचरं जगत्त- तत्सम्बुद्धौ जगदीश्वर। यजु०,३.५६, १.३८	(१)सोमो हि प्रजापतिः। श०, ५.१.३. ५६ ; तु० १.३८.५. २९.
(२) रसविशेषः। यजु०, १९. २५; तु० ऋ०, ४. ४९. ५ ;५. ४३. ५.	(२) रसः सोमः। श०, ७. ३.१.३.
(३) चन्द्रः। ऋ०, ३. ६२.१४ तु० यजु०, १०.३०.	(३) चन्द्रमा वै सोमः। कौ०, १६. ५. सोमो राजा चन्द्रमाः।श०, १०. ४. २. १.
(४) सोमौषधिराजः। यजु०, ३. ५६.	(४)सोम ओषधीनाम् राजा। गो०उ०, १. १७.
गार्हपत्यः- गृहपतिना संयुक्तानि कर्माणि। यजु०, २. २७.	कर्मेति गार्हपत्यः। कौ०, २७. ४, तु० जै० उ०, ४.२६.५.
अजस्रम् – जस्रम् गमनं विद्यते यस्य सः (अग्नि)। यजु०, १८.६६	अग्निरजस्रः। श०, ६.७.४.३.
अङ्गिरस् –योऽङ्गानांरसः प्राणस्तद्वत्। ऋ०, १. ४५. ३.	प्राणो वा प्रङ्गिराः। श०, ६० ३. ७. ३. प्राणो वै यमोऽङ्गिर- स्वान् पितृमान्। तै० आ०, ५. ७. ११.
अप्सरस् –(१) या प्रप्स्वन्तरिक्षे सरन्ति गच्छन्ति ताः (मरीचयः किरणाः)। यजु०, १८.३९.	(१)तस्य (सूर्यस्य) मरीचयोऽप्सरसः। श०,९.४.१.८.
(२) या अप्सु सरन्ति ताः (ओषधयः)। यजु०, १८.३८.	(२) तस्य ओषधयोऽप्सरसः। श०,९. ४. १. ७.
अन्तरिक्षम् - मध्यस्थ-लोकः। आर्याभि०, यजु०, २.२१ : ३२. १७.	अयम्मध्यमो लोकः। तां०, ७. ३. १८.
मध्यवर्त्याकाशम्। यजु०, ३१.१३.	मध्यं वाऽन्तरिक्षम्। श०, ७. ५. १. २६.

दयानन्द-भाष्यम्	ब्राह्मण-व्याख्यानम्
अन्धः--सुसंस्कृतमन्नम् । ऋ०, ३.३५. १ ; तु० ऋ०, ५. ४५. ६; यजु०,८. ४५; १९. ७४ ; २७. ४०.	**अन्नं वा अन्धः । जै०, १.३.३**
अन्नादः - योऽन्नं यवादिकं सर्वमत्ति तम् (अग्निम्) । यजु०, ३. ५.	अन्नादोऽग्निः । श०, २. १. ४.२८.
कर्मन् - पूर्वोक्ताय यज्ञाय । यजु०,१. ६.	यज्ञो वै कर्म । श० १.१.२.१.
अध्वरः - अहिंसनीयं यज्ञम् । ऋ०, १. ४४. १३; तु० ऋ०, १.१०. १८ यजु०, १. १४.	अध्वरो वै यज्ञः । श०, १.२.४.५; तु० श०, १. ४. ५. ३; २. ३. ४. १०.
अध्वर्युः - (१)योऽध्वरं यज्ञं युनक्ति तत्सम्बुद्धी (वैद्यराज) । यजु०,२०. ३१.	(१) अश्विनो वाध्वर्यू । का०, २८. ५. अश्विनो हि देवानामध्वर्यू | तै०, ३.२.२.१.
(२) य मात्मनोऽध्वरम हिंसनीयं व्यवहारं कर्तुमिच्छुः (मग्निः सूर्यः) । ऋ०, ४.६.४.	(२) आादित्यो मे अध्वर्युः । षड्०, २. ५. वह्निरध्वर्युः । तै०, १. १.६.१०.
वसुः—वसुर्यज्ञः । यजु०, १.३ ; तु० यजु०, १.२.	यज्ञो वै वसुः । श०, १.७.१.९,
पुरोडाश :- संस्कृतमन्नादिकम् । ऋ०, ३. ३८.४; तु० ऋ०, ४.३२. १६; ३ २८. ३ ; ५.	अन्नं वै पुरोडाशः । ऋ०, ७. १९. १
आपः - जलेन । ऋ०, ५.८३.४ ; तु० ऋ०, ७.३३. १३; वीर्यकरं जलम् । यजु०, ३३.११.	आपो हि रेतः । तां०,८.७.९. रेतो वा आपः । ऐ०, १.३. आपो मे रेतसि श्रिताः । तै०, ३. १०.८. ६

ईदृशं साम्यं नैकप्रयोगेषु द्रष्टुं शक्यम् । अर्थोपसंह्रियते–पूर्वोक्तविश्लेषणेन तुलनया चेदं प्रतिपादयितुं शक्यते-

१. ब्राह्मणप्रामाण्यत्वेन ब्राह्मणग्रन्थेषु यज्ञव्याख्यानिमित्तेन सञ्जातो मन्त्रव्याख्याभाग एव दयानन्दस्याभिप्रेतः ।

२. दयानन्दस्वामिनो भाष्यं न केवलं ब्राह्मणव्याख्यानुकूल्यं भजति अपितु नेकेषां ब्राह्मणव्याख्यावचनानां समीचीनं युक्तिप्रमाणसिद्धमर्थगर्भं समाधानञ्च प्रस्तौति ।

३. ऋषिर्दयानन्दो ब्राह्मणग्रन्थानामखिलमेव कर्मकाण्डमन्वर्थं न मेने, अपितु युक्तिसिद्धं वेदादि-प्रमाणानुकूलं मन्त्रार्थानुसृतमेव ब्राह्मणोक्तं विनियोगं स्वीचकार। तदपि कर्मकाण्डं संस्कार-विध्यादि-ग्रन्थेष्वेव महर्षेग्राह्यं न त्वाम्नायभाष्यकरणे । युक्तिसिद्धश्चैतत् ।

४. दयानन्दः सकलमेवान्वर्थं ब्राह्मणोक्तं कर्मकाण्डं प्रतीकार्थमुपलक्षणार्थं वा जग्राह । अत एव कर्मकाण्डानुष्ठाने विकल्पोऽपि तेन निर्दिष्टः । नैतत् तस्य स्वीया कल्पना अपितु ब्राह्मणग्रन्थैरेवैतत् प्रतिपादितमस्ति ।

गुरुकुल-पत्रिका, अङ्क-७५/२, दयानन्द विशेषाङ्क, अक्टूबर- दिसम्बर २०२३, ISSN ०९७६-८०१७ (UGC care listed), पृ० १०९-११३

महर्षिदयानन्दस्य पाणिनीयव्याकरणप्रचारप्रसारयोरवदानम्

प्रो० रामप्रकाश वर्णी

अतिचिरन्तनकालानन्तरं भारतवर्षस्य भाग्याकाशे देदीप्यमानम् ऋक्षगणमिव उदियाय महर्षिदयानन्दः सरस्वती। जीवनस्य प्रत्येकक्षेत्रमसौ स्वकीयातिविमलप्रतिभाप्रसूत-प्रभूतकर्तृत्वेन सातिशय-चमत्कृतियुतेन यौक्तिकेन च भृशम् अचाकाट्। न खल्वेकमपि विषयजातं तथा अशीशिषद् यद्ह्यसौ नैवम् अस्पार्क्षीत्। धर्म-राजनीति-समाज-अर्थव्यवस्था-कृषि-वाणिज्य-शिक्षा-वेदायुर्वेद-संस्कृतोन्नति-प्रभृतिषु विषयेषु तस्यातिरम्यं हर्म्यमिवोत्कृष्टं कर्म कमपि विशिष्टं शिष्टानुच्छिष्टं समुत्साहं समेधयन् सदयहृदयेषु सहृदयेषु राराष्टीति नाविदितं विविदिषापराणां विदुषामिति। आम्नायप्रविविक्षूणां संस्कृतपाटवम् उपनेतुमसावेव इदम्प्रथमतया आर्षपद्धतिमजिह्माराजपद्धतिमिव प्रत्यपीपदत्। तत्र किल **मुखं व्याकरणम्**[१] अधिजिगान्सूनां सा सातिशयमुपकर्त्रीति तदीयग्रन्थ-समवायः (अष्टाध्यायी-भाष्यम्, वेदभाष्यम्, ऋग्यजुर्वेदभाष्यं, सत्यार्थप्रकाशः, वेदाङ्गप्रकाशः, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका चेति) सार्जवं साम्रेडं करावुद्यम्येव जोघोष्टि।

महर्षिदयानन्दसरस्वतीस्वामिनः प्रादुर्भावात्पूर्वं संस्कृतव्याकरणाध्ययनक्षेत्रे महती दुरवस्था आस्थत्। **द्वादशभिर्वर्षैर्व्याकरणं श्रूयत**[२] इति जनिजुषामारावोऽतितराम् अरूरुदत् तदधिजिगान्सु - वृन्दानवद्यान्।

महर्षिस्तु तादृशान् अनृषिकृतग्रन्थपाठकान् पठकाँश्च नितरामुपतापयुतेन मनसा स्वेन कण्ठरवेण भृशं निनिन्द दिशँश्च आर्षपद्धतिं सुकुमारमतिमज्जिज्ञासुजनाँश्च आननन्द।[३] अत्र वयं व्याकरणाध्ययनक्षेत्रे तदीयमवदानं स्थालीपुलाकवन्निदर्शयामः।

महर्षिस्वामिदयानन्द एव स्वगुरुस्वामिविरजानन्ददण्डिप्रेरणया सर्वप्रथमं व्याकरणाध्ययनस्य अजिह्माराजपद्धतिमिव अतिसरलां तद्वारमपवर्गस्य वाङ्मलानां विचिकित्सितम्[४] इति हरि - हार्दमिवाति-हृदयहारिणीं ह्यार्षपद्धतिमाविश्चकार। भूयोऽपि प्रक्रियाग्रन्थावरुद्धपन्थान् "द्वावेव व्याकरणग्रन्थौ अष्टाध्यायीमहाभाष्ये"[५] तयोः पठनपाठनाय निर्दिदिशे, हिन्दी-भाषायाञ्चानेकग्रन्थान् जग्रन्थ।

महर्षिदयानन्दः सरस्वती स्वग्रन्थेषु पूर्ववर्त्यनेक-वैयाकरणान् साधु समैक्षिष्ट। इह तानुद्देशमात्रं प्रदर्शयामः -

कैयटस्य प्रत्याख्यानम् –

पातञ्जलमहाभाष्यस्य 'प्रदीपः' इत्यभिख्यया ख्यातिं गतायां स्वस्यां व्याख्यायां कैयटः **अथ शब्दानुशासनम्**[६] इति प्रतिज्ञा-सूत्रं भाष्यकारीयं वाक्यममन्यत। असावत्र –

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र शब्दैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च विवेच्यन्ते, तद्भाष्यं भाष्यविदो विदुः।[७]

---

१ महाभाष्यम्, प्रथमाह्निकम्।

२ वैयाकरणनिकाये प्रचलितोऽयं प्रसिद्धः प्रवादः।

३ सत्यार्थप्रकाशः, तृतीयः समुल्लासः।

४ वाक्यपदीयम् ०१/१४ तद्वारमपवर्गस्य वाङ्मलानां चिकित्सितम्। पवित्रं सर्वविद्यानामधिविद्य प्रकाशते।।

५ अष्टाध्यायी पाणिनीयं शब्दानुशासनमस्ति, महाभाष्यञ्च तदीयं सर्वांगीणं व्याख्यानं सर्वन्यायबीजविभृतं व्याकरणस्य कात्स्न्र्यं चेति।

६ पाणिनीयम् इदं प्रतिज्ञासूत्रम्।

७ वैयाकरणनिकायेऽतिप्रसिद्धोऽयं श्लोकः।

इत्यभियुक्तोक्तेः प्रामाण्यं मन्ये। तथाहि-भाष्यकृत् पूर्वम् **'अथ शब्दानुशासनम्'** इति प्रतिजज्ञे, तदनन्तरम् **अथ गौरित्यत्र कः शब्दः?** इति प्रश्नमुखेन **येनोच्चारितेन सास्नेति**[८] अथवा **प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्दः**[९] इति लक्षणद्वयानुगुणं शब्दस्वरूपमप्युदैरयत; किन्तु तदीयमिदं मतमप्रामाणिकं मेधातिथि-सृष्टिधर-पुरुषोत्तमदेव-जिनेन्द्रबुद्धिविरुद्धत्वात्। [१०] अत्र महर्षिस्तु सुस्पष्टमाचख्यौ इदं सूत्रं पाणिनीयमेव। प्राचीनलिखितपुस्तकेषु आदाविदमेवास्ति। दृश्यन्ते च सर्वेषु ग्रन्थेष्वादौ प्रतिज्ञासूत्राणीदृशानि। [११] एतेन नागेशप्रभृत्यनेकेषां विदुषामिहस्थं मतं निरास्थद् दयानन्दः सरस्वती स्वामीति विस्पष्टम्।

'लण्'[१२] इत्यत्र भर्तृहरि[१३]-कैयट[१४]-दीक्षितश्च[१५] लकारस्थमकारमितं मेनिरे 'र' प्रत्याहार-हेतवे, तेन ते **'उरण्-रपरः'** इत्यत्र रपरमिव लपरत्वमप्यसीषिधन्; किन्तु तेषामिदं मतं **'लृवर्णस्य लपरत्वं वक्ष्यामि'** इति भाष्यविरुद्धम्। अत्राह महर्षिदयानन्दः - "इदमवद्यम्। कुतः। इह व्याकरणे क्लृपिस्थ एक एव लृकारः। स च रपरकरणेऽसिद्धः। तेन लृकारस्य कार्याणि ऋकारे भविष्यन्ति इति, लपर-प्रयोजनाभावात्।"[१६] एतेन **तवल्कार** इति कृत्रिमशब्दसाधनमकाण्डताण्डवमिवेत्युपेक्ष्यं तस्य काव्य-कोशादिषु क्वाप्यविद्यमानत्वान्निरर्थकस्तत्र श्रमः।

काशिकाकृज्जयादित्यस्य समालोचनम्

काशिकावृत्तिकृज्जयादित्य **'ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्'**[१७] इत्यत्र **'ईदादीनां प्रगृह्यत्वे मणीवादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः'** इति भाष्यानुक्तं वार्तिकं पुरस्कृत्य **'मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते'**[१८] इत्यादौ **मणीवादीनां** प्रगृह्यत्वं प्रत्यसेधीत्। अत्र स्वकीयाष्टाध्यायीभाष्ये महर्षिर्लिलेख - जयादित्यादयो **'मणीवादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः'** इति नवीनं वार्तिकं पठन्ति ..... तत्तेषां भ्रम एव। कथम्? मूलव्याकरणग्रन्थमहाभाष्ये पाठाभावात्। प्रयोजनमपि नास्ति।

'मणीवोष्ट्रस्य' इत्यत्र इव शब्द एव नास्ति। किन्तूपमार्थो 'वा' शब्दः। [१९] अत्र प्रदीपकृत्कैयटोऽपि महर्षेरनुकूलः। तद्यथा "भाष्यवार्तिककाराभ्यामपठितत्वादप्रमाणमेतत्। 'मणीवोष्ट्रस्येति' तु प्रयोगो 'वा' शब्दस्योपमानार्थस्य। [२०] लोकेऽप्ययमित्थमेव, तद्यथा–

---

८ महाभाष्यं परपशाह्निकम्।

९ तत्रैव

१० अष्टाध्यायीभाष्यम् (दयानन्दीयम्) भाग १, पृ० १, टि० १, २, ३

११ तत्रैव

१२ प्रत्याहारसूत्रम् – ६

१३ भर्तृहरिकृत- महाभाष्यदीपिकाया इदं कथनम्– लृकारस्य" लपरत्वं वक्ष्यामि- व्याख्यास्यामीत्यर्थः। कथं प्रत्याहारः। रट्लणिति लकारे योऽकारः, असौ अनुनासिकः प्रतिज्ञायते। अत स्वेनान्येन इतरः इत् इति रेफ आदिः तन्मध्यस्य संज्ञा भविष्यतीति। तुल्यास्य० - ०१/०१/०९

१४ लपरत्वमिति। व्याख्यास्यामीत्यर्थः। 'रपरः' इत्यत्र 'र' इति लकाराकारेण प्रत्याहार आश्रीयते। तत्रान्तरतम्याद् ऋकारस्याण् रपरो भवति लृकारस्याण् लपर इति।। प्रदीपः -०१/०१/०९

१५ हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः, लण्मध्येत्वित्संज्ञकः। लघुसिद्धान्तकौमुदी माहेश्वरसूत्रप्रकरणम्।

१६ अष्टाध्यायी -०१/०१/५०

१७ अष्टाध्यायी -०१/०१/११

१८ काशिकावृत्ति १/१/११- इत्यत्रोद्धृतोऽयं श्लोकः महाभारतस्य।

१९ अष्टाध्यायी भाष्यम्, भाग –०१, सूत्र -०१/०१/११

२० कैयटकृतप्रदीपः -०१/०१/११ ,'मणीवादीनां प्रतिपेधो वक्तव्यः' इति भाष्यकार-वार्तिककाराभ्यामपठितत्वादप्रमाणमेतत्। 'मणीवोष्ट्रस्य' इति तु प्रयोगो वाशब्दस्योपमानार्थस्य।

'जातां मन्ये तुहिनमथितां पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम्',[२१] **हृष्टो गर्जति चातिदर्पितवलो दुर्योधनो वा शिखी।** [२२] तदेवम् अतिस्पष्टं जयादित्यमतं निरस्य महर्षिर्भूतार्थमदीदृशदिति सुव्यक्तम्। एवमेव उञ ऊँ[२३] इत्यत्र सूत्रद्वयं मन्वानं जयादित्यमाचिक्षेप दयानन्दः सरस्वती - पाणिनीयमिदं सूत्रमेकमेव। कथम्? सत्येकस्मिन् सूत्रे व्याख्यानरीत्या योगविभागः सम्भवति। यदि द्वे एव स्यातां तर्हि योगविभागकरणमनर्थकं स्यात्। एतत्सिद्धेऽपि जयादित्यादयः पृथक्-पृथक् द्वे सूत्रे व्याचक्षते। अतो ज्ञायते एतेषां महान् भ्रमो जातः। [२४]

पं. भट्टोजिदीक्षितस्य समीक्षणम्

उपर्युक्तं 'र' प्रत्याहारं 'उञ ऊँ' इत्यत्र सूत्रद्वयप्रसङ्गश्चातिरिच्य हल्[२५] इत्यत्र माहेश्वरसूत्रत्वप्रसङ्गे महर्षिः पं भट्टोजिदीक्षितस्य मतं निरास्थत्। तथा हि तस्यैषोक्तिः "अत्र प्रत्याहारेषु केचिद् भट्टोजिदीक्षितादयः सम्प्रवदन्ति – "इमानि माहेश्वराणि सूत्राणीति। महेश्वरादागतानि महेश्वरेण प्रोक्तानि वा। तदिदमसत्यम्। कथम्। तत्र प्रमाणाभावात्। [२६] अत्र तु प्रमाणम् - 'एषा ह्याचार्यस्य शैली लक्ष्यते यत् तुल्य-जातीयाँस्तुल्यजातियेषूपदिशति। अचोऽक्षु हलो हल्सु। [२७] एवमेव **'समर्थः पदविधिः'** सूत्रप्रवृत्तिं समास एव स्वीकुर्वाणो दीक्षितो दयानन्देन भर्त्सितः। [२८]

नागेशभट्टस्य पर्यालोचनम्

महर्षिदयानन्दः सूत्रवार्तिकेष्टिपरिभाषाणां मूलपाठविषये नितरां सावहित आसीत्। अस्मादेवासावत्र बहुत्र पूर्वेषामाचार्याणामालोचनां व्यधत्त। तेष्वन्यतमो नागोजिभट्टः। तद्यथा- स्वीकीये पारिभाषिके महर्षिर्लिलेख **"अर्थवदागमस्तद्गुणीभूतोऽर्थवद्ग्रहणेन गृह्यते।"**[२९] अत्र नागेशो भट्टोजिदीक्षितस्तदनुगाश्च परिभाषामिमाम् **'यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते'**[३०] इति अशुद्धां लिखन्ति पठन्ति व्याख्यायन्ते च। तन्नोचितं महाभाष्यविरुद्धत्वात्। एवमेव **भवति हि बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि।** [३१] इतोऽग्रे नागेशः **'चानुकृष्टं नोत्तरत्र'** इति परिभाषां स्वीये परिभाषेन्दुशेखरेऽदात्। तदसत्। यतो ह्यत्र महाभाष्ये तन्मूलं नोपलभ्यते। नैवात्र पाठस्य नागेशः किमपि मुख्य-प्रयोजनमुदाहार्षीत्। अतोऽत्रास्याः परिभाषायाः पाठो नैवौचित्यमञ्चति। परं दयानन्दस्त्विहेमामपठन् सर्वानतिशेते। इत्थमेव **'हल्स्वरप्राप्तौ व्यञ्जनमविद्यमानवद् भवति'**[३२] इति परिभाषायाः मूलपाठविषये महर्षिदयानन्दोऽतितरां सावधानः। स हि महाभाष्यानुगुणं पाठमुचितं मन्वानस्तथैवापठीत् पारिभाषिके। किन्तु नागेशस्तु **'स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवद्'**[३३] इति महाभाष्यविरुद्धामिमां परिभाषां पपाठ। अत एव प्रकृते नागेशापेक्षया महर्षिरेव ज्यायानिति विस्पष्टम्। एवमेव नागेशस्यायमपि

---

२१ मेघदूतः श्लोकः - ८३

२२ मृच्छकटिकम् –०१/०५/०६

२३ अष्टाध्यायी -०१/०१/१७

२४ अष्टाध्यायीभाष्यम् -०१/०१/११

२५ प्रत्याहारसूत्रम् -१४

२६ अष्टाध्यायीभाष्यम् -०१/०१/१४

२७ महाभाष्यम्, 'हयवरट्सूत्रस्थम् '।

२८ अष्टाध्यायी -०२/०१/०१, सन्धिविषये -१४९

२९ पारिभाषिकम्, परिभाषा -११

३० परिभाषेन्दुशेखरः, परि० सं० -११

३१ पारिभाषिकस्था परिभाषा सं० -६८

३२ पारिभाषिकम्, परि० - ६९

३३ परिभाषेन्दुशेखरः, परि० - ७९

परिभाषापाठो भाष्यविरुद्धोऽस्ति **"समासान्तविधिरनित्यः।"**[३४] अस्याः परिभाषाया भाष्यानुसारिपाठस्त्वयमेव - **'विभाषा समासान्तो भवति'**[३५] इति। अयं तस्य प्रमाद एव।

सायणाचार्यस्य मतस्य समीक्षणम्

आचार्यः सायणो व्याकरणविषये 'माधवीया धातुवृत्तिः' इति नाम्नीं बृहतीं वृत्तिं प्रणिन्ये। तत्रासौ प्रायशस्समेषां धातुसूत्राणां व्याख्यानमिषेण समग्रं तिङन्तं, कृदन्तं च रूपजातं प्रादीदृशत्। स्वीयास्मिन् संरम्भेऽसावनेकाचार्याणां मान्यमतानि समीक्षाञ्चक्रे। तदेवं बहुत्रेतरान्बुधान् समीक्षमाणोऽयं सायणोऽपि महर्षिदयानन्दस्य समीक्षाविषयः समजनि। अत्र वयं माधवीयधातुवृत्तिं स्वामिदयानन्दप्रणीतेन आख्यातिकं नामवेदांगप्रकाशेन सह तोलनात्मकदृशा समीक्ष्य कतिपयोदाहरणानि प्रस्तुवीमहे –

'ग्रह - उपादाने'(धा. सू. ९/६५) इत्यत्र यङ्लुगन्त प्रक्रियायां रूपाणि प्रदर्शयन्नाह सायणः "जाग्रहीता, जाग्रहीष्यति" **'ग्रहोऽलिटि दीर्घः' (अष्टा० - ७/२/३७)** ग्रहेर्यद्विहितमार्धधातुकं तस्य य इडिति विहितविशेषणत्वेऽपि द्विप्रयोगरूपत्वाद् द्विर्वचनस्य द्विरुक्तोऽपि स एव ग्रहिरिति दीर्घो भवति। किन्तु सायणस्येदं मतं न भाष्यसम्मतं, तथा हि भाष्ये **'एकाचो द्वे प्रथमस्य' (अष्टा० - ६/१/१)** इत्यत्र भाष्यकृता विलिखितस्य **'ग्रहिणाङ्गम्'** इत्यस्य व्याख्यायां कैयटो व्याचक्षे- "तृचोऽपि जरीगृहि इत्यङ्गं, न तु ग्रहिः, विशेषणसामर्थ्याद्धि यथाश्रुतरूपाश्रयणम्।" अत्र महर्षिदयानन्दः सुस्पष्टमलिखित् जाग्रहितेत्यत्र **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** (अष्टा०-७/२/३७) इति 'दीर्घत्वं' नैव भवति। यतो ह्यत्रैकाजित्यनुवर्तते।[३६] अतोऽत्र सायणस्य मतमयुक्तमेवेति।

पण-व्यवहारे स्तुतौ च (धा०सू० - ०१/२९१) इत्यत्र सायणो माधवीय- धातुवृत्तावलेखीत् **गुपूधूप० (अष्टा० - ३/१/२८)** इत्यादयो व्यवहारार्थस्य नेत्युक्तान्युदाहरणानि तद्विषयाणि। तथा च वृत्तिः - स्तुत्यर्थेन पनिना साहचर्यात्तदर्थः पणिः प्रत्ययमुत्पादयति। अत एव .... न **चोपलेभे वणिजां पणायान्**[३७] इति प्रयुञ्जानो भट्टिर्भ्रान्तः; परन्त्विदं सायणीयं कथनं न समीचीनम् यतो हि प्राक्पाणिनीये काशकृत्स्नीये धातुपाठे व्यवहारार्थकात् पणधातोः 'आय' प्रत्ययो विहितः।[३८] अत एवैतेन प्रमाणेनोक्तो भट्टिप्रयोगः शुद्ध एवेति। अत्र महर्षि दयानन्दः पञ्चपाद्युणादिकोशस्य व्याख्यायां 'वणिक्' पदनिर्वचनप्रसङ्गे पणिपदनिर्वचनप्रसङ्गे च पणयति व्यवहरत्येवमलेखीत्।[३९] तदेवमेतेनैतत्सिद्धम् स्वामि दयानन्दो व्यवहारार्थकादपि पण-धातोरायप्रत्ययोत्पत्तिं स्वीचक्रे। अत एव 'पणायान्' इति भट्टिप्रयोगः शुद्ध एव। न खलु पाणिनीयत्वमेव केवलं शुद्धतायाः निकषं तत्र व्याकरणान्तरमपि हेतुरिति दृढं प्रतीमः।

'खच भूतप्रादुर्भावे' (धा० सू० ९/६३) इत्यत्र सायणाचार्यो लोटि शानजन्तं 'चखान' इति रूपमददर्शत्। तद्यथा 'खच्नातु चखान, खच्नानि' (मा.धा. ताराबुक एजैन्सी कमच्छा वाराणसी सं.)। किन्तु प्रकृते शानजन्तं 'चखान' इति रूपं नैव साधु। अत्र वर्णविपर्ययस्य किमपि कारणं न विलोकयामः। तस्मादिह 'खचान' इत्येव साधु न पुनः 'चखान' इति। अत्र महर्षिदयानन्द आख्यातिके (धा०सू० - ०९/१५/६९) 'खचान' इत्येवं शुद्धतमं रूपं प्रादर्शयत्।[४०]

आचार्यः सायणो माधवीयधातुवृत्तेर्णिजन्तनामधातु प्रकरणे कविशब्दस्य रूपसिद्धिं प्रदर्शयँल्लिलेख- कविरिवाचरति, कवयति। कवयाञ्चकार। कवयिता। इत्यादि। लुङ्यन्तरङ्गमपि गुणं सिचि वृद्धिरपवादत्वाद् बाधत इति वृद्धावायादेशे च 'अकवायीत्'। किन्त्वत्र लुङि सायणस्य 'अकवायीत्' इति पदसाधनं नैवोचितम्, यतोहि अत्र **ऋत इद्धातोः (अष्टा० - ७/१/१००)** इत्यतः 'धातोः' इत्यनुवर्तते।

---

३४ परिभाषेन्दुशेखरः, परि० - ८४

३५ पारिभाषिकम्, परि० - ७३

३६ आख्यातिकम् -०९/६५

३७ भट्टिकाव्यम् -१३/२७

३८ क्षीरतरङ्गिणी - १/२९६, इत्यत्र पं० युधिष्ठिरमीमांसकस्य टि० - ०२, ०३, ०४

३९ तत्रैव टि० –०४, उणादिकोषः - ०२/७१, ०४/१३४/पृ. - ९५ टि० - ०४

४० आख्यातिकम् – धा०सू० - ०९/१५६९

तस्मादस्याः वृद्धेस्त एव धातवो विषया भवन्ति, ये हि मूलरूपेण धातुपाठे धातुत्वेन संकलिताः। नामधातूनामत्र ग्रहणं न भवति। अत्र महर्षिदयानन्दः सरस्वती स्वकीय आख्यातिके कविरिवाचरति 'कवयति, कवीयात्, अकवयीत्' इत्यादीनि वृद्धिरहितान्युदाहरणानि प्रास्तौत्।[४१] एतेनेदं स्पष्टं यदसावप्यत्र नैव वृद्धिमङ्गीचकार।

'दुह-प्रपूरणे'(धा०सू० - ०२/०५) इत्यत्र लुङि परस्मैपदात्मनेपदयोः क्सस्य लुकि च रूपाणि प्रदर्श्य सायणोऽब्रवीत् अत्र केचित् क्सस्य भाविनीमनकारान्ततामाश्रित्य झस्याद्भावे **.क्सस्याचि (अष्टा० - ०७/०३/७२)** इत्यल्लोपे 'अधुक्षत' इतीच्छन्ति, तदसत्। तत्राचीत्यस्य परसप्तमीत्वात्। तत्र दन्त्यादौ तङि 'लुग्वादुहदिह्'(अष्टा० - ०७/०३/७३) इत्यादिना क्सस्य वा लुकि 'अदुग्ध, अदुग्धाः, अदुह्वहि' इति भवति। अत्र सायणाचार्यो लुङि बहुवचने अदादेशजन्यं किमपि रूपं नैवं प्रादीदृशत्। अन्यच्चासौ तदेव रूपमप्यखण्डयद् यद्वयसौ केचिदित्युक्त्वा परामृमर्श, न चात्र सः कस्याप्यभिधानमभ्यधात्। मैत्रेय क्षीर दीक्षिताः सर्वेऽप्येनमेवानुययुः। अभूत् केवलमेकलो महर्षि दयानन्दो यो हि सायणीय- प्राचीरचीरमुत्पाट्योल्लङ्घ्य च सर्वान् पूर्ववर्तिविपश्चितोः लुङि 'अधुक्षत्, अधुक्षताम्, अधुक्षन्, अधुक्षः (परस्मै०), अधुक्षत, अधुक्षाताम्, अधुक्षन्त (आत्मने०) अदुग्ध, अदुग्धाः, अधुक्षथाः (क्सलुक्) इत्यादित्रिविधानि रूपाणि प्राददर्शत्। असौ बहुवचने 'अधुक्षन्त' इत्येवं रूपमुदाजहार न पुनरधुक्षत इति। किं बहुना? विशेषजिज्ञासुभिरस्मदीयो **'माधवीयधातुवृत्तिहृदयम्'** नाम ग्रन्थो द्रष्टव्यः।

एतेनैवाल्पीयसा विवेचनेनेदमास्थीयते –

१ महर्षिदयानन्दोऽशकृत्कृतावलोडनसर्वशास्त्रो नीरक्षीरविवेकिशेमुषीजुड् परेषां च कुमतिमुडाचार्य आसीत्। तदीयमखिलं कर्तृत्वं परोपचिकीर्षयैव न खलु लोकवित्तैषणेरितम्।

२ संस्कृतभाषाया उन्नत्यै सरलरीत्या तदध्ययनाध्यापनं दिशन्नसौ व्याकरणस्य सरलीकरणाय 'अष्टाध्यायीभाष्यं' वेदाङ्गप्रकाशाँश्च संस्कृतहिन्दीभाषयोर्ग्रन्थान् सर्वप्रथमं प्रणिन्ये। इदं तदीयं व्याकरणपरिप्रेक्ष्येऽसाधारणमवदानम्।

३ सूत्र-सूत्रार्थसम्बन्धिविवादं स्वकीयातिविमलप्रतिभाप्रभया स्वामिदयानन्दः प्रशशाम। अत्र निष्कृष्टसूत्रार्थप्रदर्शनं तस्य व्याकरणक्षेत्रे द्वितीयमवदानम्।

४ पाणिनीयव्याकरणसूत्राणामनियमे नियमकारिणीनां परिभाषाणाञ्च भाष्यानुगं शुद्धं पाठं मन्यमानोऽसौ तथैव तत्तद् दर्शायित्वा व्याकरणाय सातिशयं साहाय्यमदात्।

५ पञ्चस्वपि वृत्तिषु विवादितपदानां रूपरचनां प्रदर्श्य तेषां शुद्धतमं रूपं जनिजुषामुपकृत्यै प्रादीदृशत्। इदमपरं तत्र तस्यावदानम्।

६ 'आख्यातिके' सर्वाणि लेड्रूपाणि निदर्श्यासौ वेदार्थवीथीं प्रशशंस। स्वरवैदिकी-प्रक्रियां च यथास्थानं नैवावसाने ऽसावेव अबूबुधत्। इदं तस्य सर्वातिशायियोगदानम्।

७ 'रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्' इति पातञ्जलोक्तिमसावेव दयानन्द इदम्प्रथमतया स्ववेदभाष्ये चारितार्थ्यमुपेयाय।

८ 'सौवरः' नाम वेदाङ्गप्रकाशऽसौ सरलातिसरलया रीत्या सकलां स्वरशास्त्रसरणिं स्वैरं निरदिदेश। वन्द्योऽसावस्मदीयः।

---

४१ माधवीयाधातुवृत्तिः -०२/०५

गुरुकुल-पत्रिका, अङ्क-७५/२, दयानन्द विशेषाङ्क, अक्टूबर- दिसम्बर २०२३, ISSN ०९७६-८०१७ (UGC care listed), पृ० १६९-१७३

सत्यार्थप्रकाशस्य सप्तमसमुल्लासानुसारमीश्वरोपासनास्वरूपम्

डॉ० विजयलक्ष्मीः

आचार्यवरदयानन्दसम्मुखे तदानीन्तने भारतवर्षे निराकरणीयाः नैकाः समस्या आसन् परमेतासु समस्यासु एकतमा अन्यतमा च समस्यासीत् ईश्वरस्वरूपस्य उपासनाविधेश्च। ईश्वरस्य सत्ताविषये स्वरूपविषये च मिथ्याः कल्पनाः कृताः मतमतान्तरवादिभिः। यथा- **दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः। ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मदैवतम्। गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।** एवमेव उपासनामादायापि अन्यथा परिकल्पनया अनेकाः कुरीतयः, अनुचिताः पद्धतयः, विश्वासविपर्ययाः, विरुद्धाः भक्तिसरणयश्च प्रचलिताः जाताः। यथा- **प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशि पापं विनश्यति। आजन्मकृतं मध्यान्हे सायान्हे सप्तजन्मनाम्।** एवंविधानि लोकमतानि दर्शं दर्शं कस्य सचेतसः चेतो न दूयते। मन्ये अनेनैव आर्यसमाजस्य नियमेषु सर्वाधिकविस्तृते द्वितीये नियमे ईश्वरस्य स्वरूपं अतीव स्पष्टतया परिभाषितं स्वामिना। ऋषिणा दयानन्देन यदपि लिखितमुच्चारितं पठितं निगदितमाचरितमुपदिष्टं तत्र सर्वत्र ईश्वरं प्रति तस्य अगाधा आस्था, शुद्धा श्रद्धा च प्रत्यक्षीभवति। सत्यार्थप्रकाशस्य तु प्रथमः समुल्लासः शतसंख्यकैः ईश्वरनामभिरेव आरभ्यते। न केवलं वचसापितु ऋषिदयानन्दस्य जीवनं पश्यामश्चेत् तत्रापि असम्भवप्रायमेव विश्वासः ईश्वरं प्रति तेषाम्। कथयितुं शक्यते सन्ति बहवः सन्तजनाः येषां जीवनं भक्तेः साक्षात् स्वरूपमिव प्रतिभाति, सत्यं खलु परं आचार्यदयानन्दस्य कार्यपद्धतिः अन्यैः सन्तजनैः भिन्ना आसीत्, तां पद्धतिमविज्ञायैव मिथ्याप्रवादः प्रचारितः स्वार्थपरैः जनैः । रोगनिवारणाय कृतस्य उपचारस्य दुष्प्रचारः विरोधिभिः उग्रेण आक्रोशेन, अनवरतनिन्दयैव न कृत अपितु तैः स्वामिनो दयानन्दस्य प्राणहरणस्य अनेकाः प्रयासाः अपि कृताः। येन विषमेन विषकारणेन तेषां जीवनं इहलोके समाप्तिमगात् ततः पूर्वमपि अनेकवारं दत्तं विषं अनेन योगिना योगविधिना शरीराद् बहिः निष्कासितम् । विरोधस्तु समेषामपि साधूनां जीवनस्याङ्गं भवत्येव परं ऋषिदयानन्दजीवने तु विरोधस्य पराकाष्ठैव जातेति दृश्यते। एतस्मिन् अति प्रचण्डे विरोधे दयानन्दस्य निर्भयतायाः कारणं किमिति जिज्ञासितं चेत् कथयितुं शक्यते तस्य अनुपमः ईश्वरविश्वासः सर्वकल्याणाय क्रियमाणा अनवरता प्रार्थना च । दयानन्दस्य निर्भीकता अद्वितीया अनुकरणीया चास्ति। तेषां जीवने अनेकाः घटनाः ईश्वरं प्रति तस्य गहनतमामास्थां दर्शयन्ति। अत्र तु केवलं सप्तमं समुल्लासमादाय ईश्वरस्वरूपविषयकमुपासनाविषयकञ्च चिन्तनं क्रियते। विचारयामस्तावत् - **अथेश्वरवेदविषयं व्याख्यास्यामः** सप्तमसमुल्लासे इत्थं प्रतिज्ञाय ईश्वरगुणान् वर्णयति अधोलिखितवेदमन्त्रमुपस्थाय। तद्यथा- **ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।**[1] अर्थात् यो जनः ईश्वरस्वरूपमाकर्ण्य अस्मिन् विषये मननं निदिध्यासनं न करोति, तेन पठिता ऋक् तस्य कल्याणाय न कल्पते[2], किन्तु यो हृदयेन जानाति, धारयति च तत्स्वरूपं स एव जिज्ञासुस्तं परमात्मानमवाप्नोति।

---

१ ऋग्वेदः १.१६४. ३९

२ मैत्रायणी उपनिषद् ६.२२, द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्मपरं च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति। शब्दब्रह्मणः अयमेवोद्देश्यो यदनेन माध्यमेन जिज्ञासुः परब्रह्माप्नुयात् ।

वस्तुतः सामान्यो जनो भवेत् साधकं वा लक्ष्यसाधनाय सर्वेषां कृते ज्ञानमावश्यकमित्यत्र नास्ति काचिदपि विप्रतिपत्तिः। उक्तञ्च- **सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।**[३] **यथैधांसि समिद्धोग्निर्भस्मसात् कुरुतेर्जुन। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।**[४] **ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।**[५] परं ज्ञानावाप्तिरनन्तरं तस्य दैनिकजीवने कृतः प्रयोग एव योगिना योगः योगेश्वरेण परमेश्वरेण सह कर्तुं क्षमः। अत एव सांख्ययोगयोः योगः परमपदप्राप्तये परमावश्यकं प्रतिपादितं प्राज्ञैः।[६] अनेनैव कर्मणः महती महिमा गीता ईशोपनिषदि- **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।**[७] प्रासङ्गिकमुक्तं मैत्रायण्युपनिषदि- **शास्त्राण्यधीत्य मेधावी अभ्यस्य च पुनः पुनः। परमं ब्रह्म विज्ञाय उल्कावत्तान्यथोत्सृजेत्।**[८] श्वेताश्वतरोपनिदः द्वितीयाध्याये आद्येषु पञ्चसु श्लोकेषु **युञ्जानः, युक्तेन, युक्त्वाय, युञ्जते, युजे प्रभृतिपदानां पौनःपुन्येन प्रयोगः प्रेरयति पठकान् पाठकान् च पठितस्य पाठस्य जीवने योगाय प्रयोगाय च।**

ततः **ईशावास्यमिदं सर्वम्** इति प्रथितं मन्त्रमुल्लिखति ग्रन्थकारः। ईश्वरोपासनाप्रसंगे मन्त्रोयमतीव महत्त्वं धारयति। ब्रह्माण्डेस्मिन् सर्वत्र परमेष्ठिनः एव सत्ता, तेनैव आवृतमिदं चराचरम्। अनेन हेतुना सर्वं प्रति स्नेहभावः, प्रेमभावः, कल्याणभावो भावनीयो भद्रभावभावितेन जनेन। उद्बोधयति च भगवती श्रुतिः- **मित्रस्याहं चक्षुषा भूतानि समीक्षे।**[९] मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना अतः बहूनि मतान्तराणि लोके, अपि च अन्यमतावलम्बिनः, विरोधिनश्च तत्र कथं व्यवहरणीयमिति प्रश्नः समुदेति चेत् तत्र स्वामिनः दयानन्दस्य व्यवहारः वचनं प्रमाणत्वेन अङ्गीकर्तुं शक्यते। सत्यार्थप्रकाशस्य भूमिकायां तेनोक्तम्- **मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जाननेहारा है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों को छोड़ असत्य में झुक जाता है, परन्तु इस ग्रन्थ ऐसी बातें नहीं रक्खीं हैं और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो। सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।**

अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद्धनं न मृत्यवेथ तस्थे कदाचन।[१०] इयमपि ऋक् उद्धृता तत्र। औदासीन्याय, पलायनाय, क्लैब्याय जीवने नास्ति स्थानम्। जीवात्मनः शौर्यापूर्णा उद्घोषणा यद् इन्द्रोहम्, मृत्युरपि न प्रभवति मां जेतुम्। एतादृशः वीरतायुतं हृदयं कथं कस्मात् बिभेति। दयानन्दस्य जीवनमवलोकयामश्चेत् परितः विरोधिन एव विरोधिनः परं अस्य वीरस्य अभयतापि अद्भुता खलु, अस्याः निर्भयतायाः मूलमासीत् ईश्वरं प्रति तस्य दृढा आस्था। यद्यपि विरोधिभिः प्रवादः प्रचारितः यद् दयानन्दः ईश्वरस्य सत्तां न स्वीकरोति परं आचार्यवरदयानन्दस्य आचरणमस्य कथनस्य निःसारतायाः प्रत्यक्षं निदर्शनम्। किमपि प्रमाणं प्रत्यक्षप्रमाणं नातिशेते। कियत् रुचिरतया उदीरितमाचार्यव्यासेन प्रत्यक्षप्रमाणप्रकरणे- **न च प्रत्यक्षस्य माहात्म्यं प्रमाणान्तरेणाभिभूयते। प्रमाणान्तरं च प्रत्यक्षबलेनैव व्यवहारं लभते।**[११]

---

३ गीता ४.३३

४ तदेव ४.३६

५ तदेव ४.३९

६ गीता ५.४-५

७ ईशावास्योपनिषद् २

८ अमृतनादोपनिषत् १

९ यजुर्वेदः

१० ऋग्वेदः १०.४८.५

११ योगदर्शनम् १.३२ व्यासभाष्यम्

ईश्वरः न्यायकारी वर्तत इति सिद्धान्तो यथा स्पष्टतया, दृढतया स्वामिना दयानन्देन अङ्गीकृत उद्घोषितश्च तथा प्राबल्येन अन्येन केनापि चिन्तकेन विचारकेण वा समुद्घोषित इति दृष्टिपथं नायाति। अयमपि सिद्धान्तः अतीव कल्याणकारी लोकाय। कथमिति चेत् अवलोकयन्तु इमे श्लोकाः- **ये मानवाः पापकृतस्तुसर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः। क्रोधाग्निदग्धाःकुटिलाश्च कामिनः, सप्ताहयज्ञेनकलौ पुनन्ति ते।। सत्येन हीना पितृमातृदूषकाःतृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः। ये दाम्भिका मत्सरिणोपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते।।**[१२] अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् अस्य राद्धान्तस्य उपहासं कुर्वाणाः बहुसंख्यकाः श्लोकाः तत्र पठिताः। सदृशाः मिथ्या उपासनाविधयः लोकानामहितायैव जायन्ते । स्वामीदयानन्देन दृष्टं यज्जनाः वेदादिशास्त्राणि तु न पठन्ति, अपितु तादृशानां शास्त्राणामुपासनाविधीनाञ्च प्रचारः समाजे जातः येन ग्रन्था इमे धर्मव्याजेन अधर्मं पोषयन्ति, उपकारमुखेन अपकारमेव कुर्वन्ति लोकानाम् । यथा अद्यापि स्थाने स्थाने लिखितमस्ति- **गङ्गे तव दर्शनात् मुक्तिः। वाराणस्यां मरणादेव मुक्तिं लभते जनः, मृत्युकाले स्वकीयपुत्रनारायणस्य नामापि उच्चारितं चेत् तेनापि नारायणधाम लभते जनः ।** इतोपि मिथ्यापराणि वक्तव्यानि भवितुम्मर्हन्ति किम्। अतएव विशिष्टं महत्त्वं **ईश्वरो न्यायकारी वर्तते** अस्य सिद्धान्तस्य। लिखितञ्च स्वामिवर्येण- **जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया हो उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिए, उसी का नाम न्याय है, और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाए तो दया का नाश हो जाए क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देता है।**[१३] निर्गुणस्तुतेः फल ज्ञापयतोक्तं स्वामिवर्येण- **इससे फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण, कर्म, स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुणकीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है।**[१४] स्तुतिविषयं विशदीकुर्वता अवादि च तेन - **क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति, प्रार्थना करनेवाले के का पाप छुड़ा देगा? उत्तर - नहीं** । अनेन प्रश्नोत्तरेण सिध्यति उपासनाकरणेन ईश्वरः उपासकस्य पापान् अपाकरोति, दूरीकरोति- लोकेषु एतादृशी धारणा बहुकालात् प्रचलिता वर्तते। अद्यापि अस्मिन् वैज्ञानिके युगेपि जनाः इत्थमेव चिन्तयन्ति यदुपासनाकरणेन पापानां क्षयो जायते। ईसाईबान्धवाः तु प्रदर्शनपूर्वकं डिण्डिमघोषेण घोषयन्ति सिद्धान्तममुम्। कथयितुं शक्यते **ईश्वर न्यायकारी है** तस्मिन् काले अस्य सिद्धान्तस्य उद्घोषाय पर्याप्तमात्मबलमपेक्षते स्म, दयानन्देन तुल्यमात्मबलं तु विश्वस्मिन् विश्वे केषुचिदेव जनेषु मिलति। आत्मबलमपि परमेश्वरकृपयैव लभते जनः, कृपार्थं पात्रता अपेक्षिता। यथा- **य आत्मदा बलदा यस्य विश्व....**[१५] स्तुतिरपि आवश्यकी, प्रार्थनापि अनिवार्या, उपासनापि अपरिहार्या खलु। तद्यथा- **स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म स्वभाव का सुधारना. प्रार्थना से निरभिमानिता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।**

कीदृशः स्यादुपासक इति स्पष्टीकुर्वता कथितम्- **जो उपासना का आरम्भ करना चाहे उसके लिए यही आरम्भ है कि किसी से वैर न रक्खे, सर्वदा सबसे प्रीति करे। सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले। चोरी न करे, सत्य व्यवहार करे। जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो और निरभिमानी हो। अभिमान कभी न करे।**[१६] शौचसन्तोषतपः.... पतञ्जलेः सूत्रमुल्लिख्य लिखितं स्वामिना- **राग-द्वेष छोड़ भीतर और जलादि से बाहर पवित्र रहे। धर्म से पुरुषार्थ लाभ में न प्रसन्नता और हानि में**

---

१२ भागवतपुराणम् ४.११,१२

१३ सत्यार्थप्रकाशः, सप्तमसमुल्लासः, पृ १४८, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ८३ तमं संस्करणम्।

१४ तदेव पृ. १५१

१५ यजुर्वेद २५.१३

१६ तदेव पृ. १५४

न अप्रसन्नता करे। प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे...... ओ३म् इस एक परमात्मा के नाम का अर्थ विचार कर नित्यप्रति जप किया करे। अपनी आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे।.... जब इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्यप्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुंच जाता है। जो आठ पहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है।[१७] अत्र स्वामिवर्यैः स्फुटमभिहितं यद् यः उपासना कर्तुमिच्छति स उपासकः आदौ ईर्ष्यां त्यजेत्, द्वेषं च जह्यात्। गीताकारमते रागद्वेषादयः निवृताः स्युश्चेन्महान्लाभो लभते जनः, तद्यथा- **रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्। आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।**[१८] तथा च व्यासभाष्यमस्मिन् प्रकरणे- **ततश्च चित्तं प्रसीदति। प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदं लभते।**[१९] न केवलमेतावतैवापितु सर्वैः सह प्रीत्यापि व्यवहरणीयमुपासकेन। अवधेयमत्र यत् दयानन्दानुसारं विकारदूरीकरणस्य कार्यमिदं अवश्यं करणीयं जिज्ञासुना, विषये अस्मिन् यदृच्छा नास्ति । एवं नास्ति यज्जनः उपासनापि कुर्यात्, ईर्ष्या-द्वेषादिषु संलिप्तोपि भवेत्। अन्तश्शोधनाय राग-द्वेषादीनां परित्यागः अवश्यं करणीयम्। सन्ध्या-यज्ञ-ध्यान-उपासना-अर्चना-पूजादीनि कर्माणि प्रायशः सर्वैः क्रियत एव। किन्तु तदापि अभिमानम्-असूया-ईर्ष्या-द्वेष-क्रोधादिविकाराणां तरङ्गाः वातावरणे सघनतया व्याप्ताः परिदृश्यन्ते। अनेन सिद्धं भवति यदस्माकमुपासनाविधिः सम्यक् नास्ति, कस्यापि धर्मस्य, कस्यापि देशस्य जनस्य वा कोपि उपासनाप्रकारो भवेत्, तेन विधिना, पद्धत्या, प्रकारेण वा यदि जनस्य विकाराः क्रमशः क्षीणाः न भवन्ति, शान्तेः, सुखस्य अनुभूतिर्न भवति साधकाय तदा विधीयमाने अस्मिन् विधाने सर्वं सुतरां सुव्यवस्थितं नास्तीति सुनिश्चितं ज्ञेयम् । तदा आग्रहं परित्यज्य, अभिमानं परिहृत्य, अन्तःकरणं समास्थाय अवश्यं विचारणीयं विवेचनीयञ्च विवेकिना यदस्मिन् साधनविधौ को दोषः. का त्रुटिः, कतमा असावधानता, कीदृशी न्यूनता वा जायते। व्यवस्थितेन स्वान्तेन प्रार्थिते सति परमेश्वरस्यापि सहाय्यं मिलति साधकाय । प्रायशस्तु लोकाः सांसारिकपदार्थानां वस्तूनां कामनैव कुर्वन्तः कृपाभिलाषिणो भवन्ति, प्रचलिताः प्रार्थनाः लौकिककामनापरैव बहुशः। कृते प्रयत्ने जागतिकानि असाध्यानि अपि साध्यानि साधयन्ति सहिष्णवः परिश्रमपराः पुरुषाश्चेत्तदा आत्मोत्थानाय जगत्कल्याणाय च कृता प्रार्थना फलवती सिद्धा च भवत्येव, इत्यत्र नास्ति काचिदपि विप्रतिपत्तिः। अस्मिन् प्रकरणे इदमपि अवधेयं यत् यथा यथा जनानां स्वाध्यायप्रवृत्तिः उत्तरोत्तरह्रासं प्राप्ता, स्वाध्यायाभावे मननं चिन्तनं निदिध्यासनं न क्रियते जनैः, अनेन अमन्त्रोपि मन्त्रनाम्ना, अनीश्वरोपि ईश्वरनाम्ना, कस्यापि प्रख्यातस्य ग्रन्थस्य नाम्ना कोपि विषयः सन्देशो वा, उपासनानाम्ना विपरीतविधिरपि विधितुल्यः अविरोधेनैव समाजे प्रचलति । यथा **भागवतनाम्ना केचन श्लोकाः कोरोनानिवारणाय व्हाट्सएपमाध्यमेन केनापि प्रसारिताः आसन् कोरोनाकाले।** प्रार्थनायाः कियत् शोभनं स्वरूपमुपदिशति भगवती श्रुतिः, तद्यथा- **यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः।**[२०] आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धा पूता भवत यज्ञियासः।[२१] एवमेव नैकाः मन्त्राः सन्ति। प्रार्थना कीदृशी भवेदित्यपि संकेतितम्, तद्यथा- **ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिए...... जैसे हे परमेश्वर आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझको सबसे बड़ा, मेरी ही प्रतिष्ठा और मेरे अधीन सब हो जाएं इत्यादि।**[२२]

---

१७ तदेव

१८ गीता २.६४

१९ योगदर्शनम् १.३३

२० यजुर्वेदः ३६.२

२१ ऋग्वेदः १०.१८.२

२२ सत्यार्थप्रकाशः, सप्तमसमुल्लासः, पृ.१५३

अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे स्वामिवर्याणां निर्दिष्टः समर्पणस्यायं निर्देशः अतीव श्रेयस्करं जीवनाय। समर्पणं दुर्लभप्रायमेव साधकेषूपासकेष्वपि। कस्यापि सौभाग्यशालिनः जीवने समर्पणं घटितम्भवति चेत् अनुपमा अवर्णनीया अनुभूतिरियं खलु। समर्पकस्य सर्वाणि दुःखानि, कष्टानि सर्वाः समस्याः तिरोहिताः भवन्ति। किं सपर्पणमिति उपदिशता उक्तं गीताकारेण- **यत् करोषि यदश्नासि यद् ददासि जुहोषि यत्।यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्।**[२३] निर्दिशति भगवती श्रुतिः- **यदग्नेस्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्। स्युष्टे सत्या इहाशिषः।**[२४] सम्यगेवाभिहितं गीतायाम्- **तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः। गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।**[२५] समर्पणेन साधकः पुनर्न जायते, अतितरति मृत्युम्। ईश्वरसमर्पणस्य फलं प्रतिपादयता पतञ्जलिना निगदितम्- **समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्**[२६] समाधिरर्थात् **सम्यग् आधीयते अस्मिन्नात्मतत्त्वयाथातथ्यम्** तस्योपलब्धिः समर्पणाद् भवति। सत्यार्थप्रकाशकारानुसारं सम्यगुपासनायाः फलम्- **जब इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है।**[२७] अपि च- **इसका फल- जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष, दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं, इसलिए परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए। इससे इसका फल पृथक् होगा परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबराएगा और सबको सहन कर सकेगा क्या यह छोटी बात है? और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है, क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों के सुख के लिए दे रक्खे हैं, उसका गुण भूल जाना, ईश्वर को ही न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।**[२८] अध्यात्मयात्रा कथं चलति, तत्र कीदृशी कियती चोन्नतिर्जाता इति परीक्षणाय परिज्ञानायापि सहायकः स्वामिवर्याणां वक्तव्यमिदम्। उचितविधिना विहितया उपासनया उपासकस्य दैनन्दिनजीवनं तथा शुद्धं पावनं सुगन्धिपूर्णं भवति यदन्ये जनाः अस्य सुगन्धिरसमनुभवितुं समर्थाः भवन्ति, यदि समीपे सुगन्धं द्रव्यं प्रज्वलति तर्हिः समस्तमपि वातावरणं सुगन्थिपूर्णं जायते इति प्रत्यक्षमेव सर्वेषाम्। केन कियन्मात्रायामियमनुभूतिर्भवति इति अन्यो विषयः। न केवलमन्तःकरणमपितु उपासकस्य आत्मापि निर्गतनिखिलकल्मषो नितान्तनिर्मलो जायते। ईश्वरोपासना विषये कथितस्यास्य वक्तव्यस्य प्रत्यक्षमेव निदर्शनं ऋषिदयानन्दस्य जीवनम्। जीवनस्य अल्पावधौ यत्कार्यं तेन कृतं यथा च कृतं तत्सर्वमविरुद्धेन चेतसा परमया श्रद्धया स्मरणीयमनुकरणीयञ्च। कांचयुतं विषप्रदानकारणात् अत्यधिककष्टेन, तीव्रवेदनया च ऋषेः प्रत्यङ्गं परिव्याप्तमासीत्, तस्यां घनीभूतायामपि पीडावस्थायाम् **ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो, तूने अच्छी लीला की, ओ३म्** शान्तभावेन, जागरूकचेतसा आत्मना च निःसृतानि इमानि अमृतवचांसि कं विवेकिनं सुधियं विचारशीलं वा न प्रेरयन्ति सम्यगीश्वरोपासनार्थम्।[२९]

---

२३ गीता ९.२७

२४ ऋग्वेदः ८.४४.२३ अपि च- यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः। १.१.६

२५ गीता ५.१७

२६ योगदर्शनम् २. ४५

२७ सत्यार्थप्रकाशः सप्तमसमुल्लासः, पृ. १५४

२८ तदेव पृ. १५५

२९ कठोपनिषद् २.२.१३ नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां .....। तमात्मस्थं ये अनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।